

# आप्त स्वरूप अन्वयार्थ भाषा टीका

टीकाकार—

पं उग्रसेन जैन M.A.,L.L.B.

जैन मित्र मंडल ट्रैक्ट नं० ११७

# आप्त स्वरूप अन्वयार्थ भाषा टीका

टीकाकार—

पं० उग्रसेन जैन M.A., LL.B.

प्रकाशक—

महावीरप्रसाद श्यामलाल जैन

मालिक फर्म महावीरप्रसाद एण्ड संज़

चावड़ी बाज़ार देहली।

प्रथम बार { जुलाई [illegible] } मूल्य

[illegible] { वीर निर्वाण संवत् [illegible] } सदुपयोग

# दो शब्द

पं० उग्रसैनजी जैन M.A., LL.B. वकील रोहतक समाज के सुपरिचित तथा प्रसिद्ध विद्वान् हैं। आपको धर्म व समाज सेवा की अनुपम लगन है। आपकी 'धर्म शिक्षावली चारों भाग' व 'नारी शिक्षादर्श' पुस्तकोंके अतिरिक्त 'पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय' और 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार' की बृहद् हिन्दी टीकायें भी प्रकाशित हो चुकी हैं। धर्म शिक्षावली और पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय कई वर्षों से परिषद् परीक्षा बोर्ड के पाठ्य क्रम में निश्चित हैं और इसी से उनकी उपयोगिता स्वयं सिद्ध है। 'नारी शिक्षादर्श' भी अपने ढंग की अपूर्व पुस्तक है तथा ज्ञान सामग्री से परिपूर्ण है। आपकी उक्त दोनों हिन्दी टीकाओं को लोग बड़े प्रेम व उत्साह से पढ़ते हैं।

यह 'आप्त स्वरूप' अत्यन्त उत्तम ग्रन्थ है तथा इसमें आप्त (सच्चे देव) का विस्तृत वर्णन किया गया है। भगवान् के विशेष गुणों व उनके नामों की सार्थकता पढ़ने योग्य है। पं० उग्रसेन जी ने अपनी इस विस्तृत टीका में प्रत्येक बात को भली भांति स्पष्ट कर दिया है तथा इसे सर्वाङ्ग सुन्दर व परिपूर्ण बनाने में किसी तरह की कसर नहीं रखी है। अब प्रत्येक व्यक्ति इस ग्रन्थ के मर्म को भली भांति समझ सकता है। इसके लिये टीकाकार अत्यन्त धन्यवाद के पात्र हैं।

गत वर्ष जौलाई मास में जैन समाज के प्रसिद्ध धनाढ्य सर सेठ हुकमचन्द जी तथा देहली जैन समाज के प्रसिद्ध धर्मात्मा

श्रीमान् ला० महावीरप्रसाद जी ठेकेदार अपनी मित्र मंडली सहित पूज्य बाबा भागीरथ जी वर्णी तथा ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जी की बीमारी के समय उनसे मिलने के लिये रोहतक गये थे और वहां जैन धर्म भूषण ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जी ने इस ग्रन्थ की चर्चा तथा हिन्दी टीका की प्रशंसा की थी।

**श्रीमान् ला० महावीर प्रसाद जी ठेकेदार साहिब सभापति जैन मित्र मंडल, देहली ने उसी समय इस ग्रन्थ को अपनी ओर से छपाने की स्वीकारता प्रदान की थी और उन्हीं के द्रव्य से यह ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है।**

आशा है कि समाज इस ग्रंथ को पढ़ कर पूर्ण लाभ उठावेगी।

निवेदक—

**उमरावसिंह जैन**

प्रधान मंत्री,

जैन मित्र मंडल।

धर्मपुरा, देहली

ता० १ जुलाई, १९४१





## श्रीमान् ला० महावीरप्रसाद जैन ठेकेदार रईस,

मालिक फर्म—

मैसर्स महावीरप्रसाद एण्ड सन्ज चावड़ी बाजार, देहली।

आप जैन मित्र मंडल के सभापति तथा देहली की प्राय: समस्त ही धार्मिक व सामाजिक संस्थाओं के आदर्णिय स्तम्भ हैं।

आप ही के द्रव्य से यह पुस्तक धर्म प्रचारार्थ प्रकाशित हुई है।

# प्रस्तावना

प्रत्येक आत्मा को संसार में अपनी चरम सीमा की उन्नति करने का अधिकार है, और इसी अधिकार प्राप्ति के लिये वह सदा प्रतिपक्ष शक्तियों से तुमुल संघर्ष करता रहता है, जब इस अपनी पूर्णता को पा लेता है तब संघर्ष बंद हो जाता है। आत्मा मुक्त हो जाता है। संसार के प्राचीन दर्शनों ने मुक्ति की बड़ी महिमा गाई है आत्मीक मुक्ति को ही वे यथार्थ मुक्ति मानते रहे हैं इसी लिये इसे प्रायः सबने स्वीकार किया है।

उन दर्शनों में सांख्य दर्शन में आत्मा स्वयं ज्ञान का पुंज नहीं है। बुद्धि उसका गुण नहीं है, वह तो प्रकृति का विकार है मुक्त अवस्था में पुरुष बुद्धि से पृथक् हो जाता है अतएव बुद्धि नामक विशेष गुण के अभाव में पुरुष का वर्णनीय कोई निश्चित स्वरूप नहीं समझ पड़ता।

न्याय और वैशेषिक दर्शन भी आत्मा को स्वतः ज्ञान स्वरूप न मान, "ज्ञान आत्मा से कतई भिन्न है दोनों का मिलाप समवाय संबंध से हो रहा है" मानता है। अद्वैत दर्शन में आत्मा का कोई स्थान नहीं है आत्मा और परमात्मा का भेद माया से हो रहा है, माया भी कोई यथार्थ वस्तु नहीं है ऐसा होते हुए भी उस अयथार्थ वस्तु माया के लिये न जाने कितने काल से नाश का प्रयत्न हो रहा है यदि माया अयथार्थ है तो उसके विनाश के लिये प्रयत्न कैसा। यदि यथार्थ है तो अद्वैत कैसा।

प्राय:कर ये दर्शन—आत्मा अपनी सत्ता खोकर परमात्मा में मिल जाता है मानते हैं जब अपनी सत्ता नहीं, अपना स्वरूप नहीं तो उसको प्राप्त होना आप्त बनना तो दूर की बात है मीमांसकों के यहां कर्मकांड की प्रधानता है, वेद अपौरुसेय है आत्मा प्रयत्न करने पर भी वेद विहित यज्ञादि करने पर भी सर्वज्ञ नहीं हो सकता अत: प्रयत्न कुछ विशेष कार्यकारी नहीं ठहरता। पर जैन सिद्धान्त बतलाता है कि दोष और आवरण का क्षय आत्मा में क्रम २ से होकर पूर्ण क्षय अवश्य हो जाता है जिस में क्रम से क्षय होता है उसमें पूर्ण क्षय भी हो सकता है, जैसे सोने का मल का क्रम से नाश ही पूर्ण नाश हो जाता है और सोना बिल्कुल शुद्ध हो जाता है, इसी तरह आत्मा से कर्म मल का क्रम २ से नाश होता और ज्ञानादि गुण प्रगट होते देखा जाता है, अतएव उसमें किसी काल में दोषादिकों का पूर्ण नाश और उनके दूर होने से ज्ञानादि गुणों का पूर्ण विकाश हो सकता है।

**दोषावरणयोः हानिः निश्शेसाति शायनात्**
**क्वचिद्यथा स्वहेतुभ्यो वहिरन्तर्मलक्षयः।** स्वामी समंतभद्र

आत्मा के उन दोषादिकों का नाश अपना पराया भेद विज्ञान हुये बिना नहीं हो सकता, क्योंकि जब आत्मा दोषों को पर ही नहीं समझेगा तो उनको दूर ही क्यों करेगा। उस भेद ज्ञान की प्राप्ति का साधन अपने स्वरूप की पहिचान या सच्चे देव शास्त्र गुरु की प्रतीति है क्योंकि आत्मा यथार्थ में सब बराबर हैं जो

एक का स्वरूप है वैसा ही सब का है, पर वह सबका अपना २ है किसी की सत्ता का विनाश नहीं है। अंतर इतना ही है कि हमारा स्वरूप अज्ञान आच्छादित है, जब अज्ञान हटता है सब यथार्थ स्वरूप प्रकाशमान होने लगता है। अरहंत की आत्मा अज्ञान से कतई मुक्त है अतएव उसमें सच्चे स्वरूप के दर्शन किये जा सकते हैं जहां सच्चा स्वरूप है वहीं पूर्ण ज्ञान है, उसी ज्ञान के द्वारा सच्चे समस्त पदार्थ की स्थिति है अन्यथा वे ज्ञेय नहीं हो सकते जो ज्ञेय नहीं वे हैं ही नहीं।

सूक्ष्मान्तरित दूरार्थाः प्रत्यक्षा कस्यचिद्यथा।
अनुमेयत्वतोऽग्न्यादिरिति सर्वज्ञ संस्थितिः। समन्तभद्र

इसलिये अरहंत ही निर्दोष होने से पूर्ण ज्ञानी हैं और इसी लिये उनके वचन प्रमाणीक हैं प्रमाण वाधित नहीं हैं।

सत्वमेवासी निर्दोषो युक्ति शास्त्राविरोधिवाक्।
अविरोधो यदिष्टं ते प्रसिद्धेन न बाध्यते। समंतभद्र

इस तरह आप्त के स्वरूप जब हमें यथार्थ निर्णय हो जावे तो हम उसके वचनों पर वे रोक टोक विश्वास कर सकते हैं संसार में भी किसी बात की प्रमाणीकता वक्ता द्वारा ही की जाती है वक्ता जितने अंशों में सदोष और अल्पज्ञ होगा उतना ही अविश्वसनीय होगा, जितना २ निर्दोष और विशेषज्ञ होगा उतना ही प्रमाणीक व विश्वसनीय होगा।

अरहंत भगवान घातिया कर्म रहित होने से पूर्ण निर्दोष व

पूर्ण ज्ञाता हैं अतएव वह ही हमारे सत्पथ प्रदर्शक या परम हितोपदेशी हो सकते हैं और उनका आदर्श पा कर ही हम अपनी आत्मा का स्वतंत्र रूप से पूर्ण विकाश कर सकते हैं।

संसार में प्रत्येक प्राणी अपना मार्ग निश्चित नहीं कर सकता उसे तो विरले ही करते हैं, हां साधारण जनता उसका अनुसरण कर अपना कल्याण अवश्य कर सकती है, बियाबान बन को मदोन्मत्त हाथी ही भेदता है पर मार्ग बन जाने पर क्षुद्र जीव भी जाना शुरू कर देते हैं। साधारण जनता तो अपना आदर्श ढूंढती है आदर्श निश्चित होने पर ही वक्ता के वचनों की प्रमाणीकता हुआ करती है, संसार में प्रत्येक सम्प्रदाय के अनुसार अनेकों महात्मा हुये हैं पर समूचे संसार ने उन्हें आदर्श रूप से नहीं अपनाया है क्योंकि आदर्श या आप्त की परिभाषा ही सबकी कोई एक निश्चित नहीं है–किसी भी सुमार्ग का प्रतिपादन करने के पूर्व आप्त और उसकी ठीक जानकारी के प्रमाणों का निश्चित करना सर्व प्रथम कर्त्तव्य ठहरता है जिससे कहीं बीच में ही हमें न डिगना पड़े, हम पथ भ्रष्ट न हो जांय हमें अपना नेता मार्ग पर चलने के पूर्व ही सोच समझ कर चुन लेना चाहिये जिससे निर्विघ्न यथेष्ट पद पर पहुंच सकें हमें आप्त आदर्श या सच्चे नायक की परख करने को इन बातों का ध्यान रखना चाहिये:—

क्या वह यथार्थ है ? उसमें पार करने की शक्ति है अर्थात ठीकर मार्ग को हमें बता सकता है ? वह अपने समान क्या हमें बना सकता है ? उसमें कोई स्वार्थादि दोष तो नहीं है ? क्या उसने

स्वयं मार्ग का अनुभव किया है ? क्या उसके द्वारा उद्दिष्ट मार्ग अमल में लाया जा सकता है, कोरा शब्दों का आडम्बर तो नहीं ? उसके द्वारा बताया मार्ग स्वप्न जाल तो नहीं सदा शास्वत सुख शांति रूप है। इन्हीं दृष्टियों को लक्ष्य रख आचार्यवर्य ने इस आत्म स्वरूप का निर्माण किया है जिससे जीव ये अनुभव कर सके कि आत्मा का अपना असली निज रूप क्या है किन २ परिवर्तनों से वह प्राप्त हुआ है उन समस्त परिवर्तनों का पुंज आत्मा का स्वरूप शास्वत भी है या नहीं ? इस समूचे व्याख्यान को द्रव्य दृष्टि, पर्याय दृष्टि, निश्चय नय, व्यवहार नय, भूत नय, अविनय आदि अनेक प्रकार से आचार्य श्री ने बताने की कोशिश की है।

आचार्य श्री ने कब किस काल, देश, गण, गच्छ, संप्रदाय को सुशोभित किया है यह अभी तक प्रगट नहीं हो सका है, भाषा भाव शैली आदि से अवश्य मध्य युग ६ से १२ वीं सदी तक के ज्ञात होते हैं इसका निर्णय विद्वत्समाज करेगी।

श्रीमान पं० जुगलकिशोर जी सरसावा के सौजन्य से उक्त ग्रन्थ माणिकचन्द ग्रन्थमाला को प्राप्त हुआ और उसकी ही असीम कृपा से यह संस्कृत रूप से प्रकाश में आया। ऐसे अनुपम ग्रन्थ की जो समूचे अपनी आत्मा के सार को बताने वाला है भाषा टीका न होना खटकने वाली बात थी, हर्ष है अनेक ग्रन्थों के अनुवादक जिनवाणी सेवक ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जी की प्रेरणा से पं० उग्रसेन जी M.A.L.L.B वकील द्वारा यह ग्रंथ भाषानुवाद और भावानुवाद प्रकाशित हो रहा है। बाबू जी को सदा

धर्म से प्रेम रहा है आपकी कृतियों से पूर्ण धर्मज्ञता टपकती है इसके पूर्व आप नियमसार इंग्लिश, भावपाहुड़ इंग्लिश, पुरुषार्थ सिद्धयुपाय, हिन्दी धर्म शिक्षावली चारों भाग, नारी शिक्षादर्श, रत्नकरंड श्रावकाचार का आधुनिक भाव भाषा शैली पर रोचक व्याख्यानादिक कर चुके हैं।

यद्यपि आपको अपने गृहस्थ कार्यों से बहुत कम अवकाश मिला है तथा आपका स्वास्थ्य भी ठीक नहीं रहा है फिर भी आपके हृदय में जिनवाणी की सच्ची लगन थी उस ही की धुन में आपने इसे पूरा करके ही छोड़ा है। हमें आप से आगे भी बहुत आशा है। हमारी भावना है कि आप नीरोग और चिरायु हों जिससे हमें आगे भी अंग्रेजी हिन्दी उर्दू में अनूदित या मौलिक रचनायें प्राप्त हो सकें और जिनवाणी का विश्व में प्रकाश कर सकें।

रवीन्द्रनाथ जैन
न्यायतीर्थ
हिन्दी प्रभाकर
( Honours )

रोहतक
१०-५-४१

# लेखक के दो शब्द

यह आप्त स्वरूप नाम।का ग्रन्थ श्री माणिकचन्द,जैन ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित जैन सिद्धान्त सारादि संग्रह में छपा हुवा है न इस के समय और न इसके कर्त्ता आचार्यवर का कुछ पता है। हां यह जरूर है कि यह एक प्राचीन ग्रन्थ है इसके श्लोक श्री कुन्द २ आचार्य कृत प्रवचन सार की संस्कृत टीका में उद्धृत अवश्य हैं जिनसे पता चलता है कि यह एक प्राचीन ग्रन्थ है। इसमें आप्त के स्वरूप का दिग्दर्शन आचार्यवर ने भिन्न २ अपेक्षा से बड़ी खूबी के साथ कराया है। यह ग्रन्थ समाज के प्रसिद्ध विद्वान खोजक पं० जुगलकिशोर जी ने किसी भंडार में से खोज कर निकाला था, उनसे दर्यापत करने पर भी इसके सम्बन्ध में कुछ विशेष विवरण प्राप्त नहीं हो सका।

सन १६४० ई० के फरवरी मास में ब्र० शीतलप्रसाद जी रुग्णावस्था में इलाज के लिये रोहतक पधारे थे, उनको ग्रन्थों का उद्धार करने कराने का शौक हमेशा ही रहा है, आपने मुझे आज्ञा की कि इस ग्रंथ का अन्वयार्थ तथा भाषा टीका अभी तक नहीं हुई है, इसे करदेवें। यद्यपि मेरा स्वास्थ्य भी उस समय ठीक नहीं था, तथापि ब्रह्मचारी जी की आज्ञा उल्लंघन के दोषारोपण के भय से मैंने इस कार्य को प्रारंभ कर दिया ब्रह्मचारी जी की निगरानी में ही यह कार्य सम्पादन हुआ है, यद्यपि डाक्टर और वैद्य महोदय की यह कड़ी हिदायत थी कि ब्रह्मचारी जी कोई दिमाग़ी कार्य न करें परन्तु उनका धर्म प्रेम तथा जिन वाणी भक्ति उनको निचला नहीं बैठने देती थी, अन्य कार्यों के अतिरिक्त इस ग्रंथ के सुनने तथा ग़लतियों के संशोधन के लिये घंटे डेढ घंटे का समय आप नित्य प्रति निकाल ही लिया करते थे। जोलाई मास में यह टीका

समाप्त हो गई थी दैव योग से श्रीमन्त सर सेठ हुकमचन्द जी साहिब इन्दौर, अपनी देहली की मित्र मंडली सहित जिस में चौधरी जग्गीमल जी जोहरि देहली, ला० महावीरप्रसाद जी रईस ठेकेदार, ला० रतनलाल जी रईस मादीपुरिया मिस्टर अजित प्रसाद जी आदि कई माननीय महोदय सम्मिलित थे, रोहतक ब्रह्मचारी जी से मिलने के लिये पधारे, ब्रह्मचारी जी ने श्री सेठ हुकमचन्द जी से इस ग्रन्थ को मुद्रित कराने के लिये कहा उस पर **ला० महावीरप्रसाद जी ने अपनी लागत से इस ग्रंथ को प्रकाशित कराने की स्वीकारता दी अब यह उन्हीं की ओर से प्रकाशित होकर पाठक महादयों के हाथों में पहुंच रहा है। इसके लिये हम ला० महावीरप्रसाद जी के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रगट करते हैं।**

इस ग्रन्थ के लिखने तथा प्रूफ संशोधन में मुझे पं० रवीन्द्रनाथ "न्यायतीर्थ" हिन्दी प्रभाकर तथा मेरी अपनी पुत्री कुमारी विद्यावति जैन "हिन्दी प्रभाकर" से बड़ी सहायता मिली इसके लिये उनका आभारी हूं। भाई रघुवीरसिंह जी कोषाध्यक्ष जैन मित्र मंडल देहली ने गयादत्त प्रेस द्वारा छपवाने में जो कष्ट उठाया है उसके लिये हम उनके कृतज्ञ हैं।

इस ग्रंथ की इस टीका को प्रकाश में लाने का अधिकांश श्रेय **ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जी को ही है**, इसके लिये जैन समाज उनकी चिरकाल तक ऋणी रहेगी।

हमें आशा है कि पाठक गण इस ग्रंथ को पढ़ कर पूरा २ लाभ उठावेंगे।

**ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णमासी**
**रोहतक १०-५-४१**

उग्रसेन जैन (गोहाना निवासी)
M.A.LL.B

ओ३म् नमः सिद्धेभ्यः

# आप्त स्वरूप ग्रन्थ की भाषा टीका

दोहा—मंगल श्री अरहन्त सिद्ध, आचारज उवझाय ।
साधु पंच परमेष्टीपद, नमूं नमूं गुण ध्याय ॥

श्लोक—आप्तागमः प्रमाणं स्याद्यथावद्वस्तु सूचकः
यस्तु दोषैर्विनिर्मुक्तः सोऽयमाप्तो निरञ्जनः॥१॥

अन्वयार्थ—(यथावत् वस्तु सूचकः) यथार्थ वस्तु को प्रगट करने वाला (आप्त आगमः) आप्त द्वारा कहा हुआ आगम (प्रमाणं स्यात्) मानने योग्य होता है (तु) और (यः) जो (दोषैः) दोषों से (विनिर्मुक्तः) रहित है (स) वह (अयम्) ही (निरञ्जनः) मल रहित वीतरागी (आप्तः) आप्त वक्ता होता है ।

भावार्थः—सच्चा मानने योग्य आगम वही है जिस में वस्तु का सत्यार्थ स्वरूप; वीतरागी, सर्वज्ञ, हितोपदेशी चार घातिया कर्म रूपी मल रहित, अनन्त चतुष्टय संयुक्त श्री अरहन्त परमेष्टी द्वारा प्रतिपादन किया गया हो । सच्चे आप्त द्वारा कहा हुवा आगम ही अन्य जीवों का कल्याण कर्त्ता होता है, उसमें तत्व भूत जीव के हित का उपदेश पाया जाता है, पूर्वापर विरोध से रहित होता

है किसी भी वादी प्रतिवादी द्वारा खण्डन नहीं किया जा सकता, मिथ्या मार्ग का निराकरण करके प्राणीमात्र के कल्याण रूप मार्ग का प्रदर्शक होता है। सच्चे आगम में समस्त जीवों की दया पालन करने का तथा रागादिक विषय कषायों का अभाव कर परम स्वाधीन आत्मानन्द को प्राप्त करने का उपदेश मुख्यतया होता है। ऐसा उपदेश ऐसा ही वक्ता कर सकता है, जो सर्वथा निर्दोष हो, वीतरागी हो, जगत के समस्त त्रिकालवर्ति पदार्थों को उनके समस्त गुण पर्यायों सहित यथार्थ जैसा का तैसा जानने वाला हो। भगवान अरहन्त ही ऐसे आप्त हैं जिन के द्वारा ऐसे उपदेश की प्राप्ति भव्य जीवों को हुआ करती है। भव्य जीवों के पुण्य निमित्त से ही अरहन्त परमेष्टी का विहार अनेक देशों में होता है जहां उनकी दिव्य ध्वनि द्वारा धर्म रूपी अमृत की वर्षा होती है। प्रभु की दिव्य ध्वनि की ऐसी अचिन्त्य महिमा है कि जब वह ध्वनि होती है तो उसमें पदार्थों के स्वरूप का ऐसा प्रकाश होता है कि जिसे सुन कर अनेक जीव देव, मनुष्य, पशु सब ही अपनी २ भाषा में उसका मतलब समझ लेते हैं। पदार्थों का सत्यार्थ स्वरूप प्राप्त कर अपने अज्ञान और मोह को मिटाते हैं। धर्मामृत का पान कर अनादि से लगी विषय कषाय की तृषा को शान्त करते

हैं। अल्प ज्ञानियों के ज्ञान में यह बात नहीं पाई जाती, भगवान का ज्ञान केवल ज्ञान होता है, जो समस्त ज्ञेय पदार्थों को एक समय मात्र में एक साथ ही जानता है, जो सदैव ही प्रकाशमान रहता है जो अनन्त तेज का भरा हुवा है, ऐसा ही ज्ञान वास्तव में वस्तु के यथार्थ स्वरूप को जान सकता है।

रागी, द्वेषी, विषयी कषायी, मिथ्या दृष्टि एकान्त वादी अल्पज्ञों द्वारा प्रतिपादित मार्ग कभी भी कल्याण मार्ग होनहीं सकता।

आप्त का आगम अनेकान्त वाद रूप है, क्योंकि वह अनेकान्त रूप वस्तु के स्वरूप को बताने वाला है, हर एक वस्तु अनेकान्त रूप अर्थात् अनेक स्वभावरूप है, वस्तु द्रव्य की अपेक्षा नित्य है पर्यायों की अपेक्षा अनित्य है, अभेद की अपेक्षा एक रूप है, अनेक गुणों की अपेक्षा अनेक रूप है। अपने द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा अस्ति रूप है, पर द्रव्यों के द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा नास्ति रूप है इत्यादि इसी बात को जिनागम ने स्याद्वाद नय के द्वारा समझाया है।

(स्यात्—किसी अपेक्षा से; वाद कहना)

जैसे स्वर्ण द्रव्य को लीजिये, अपने गुणों की अपेक्षा यह नित्य परन्तु पर्य्यायों की अपेक्षा अनित्य है। सोने

की डली से कुण्डल बनाये, सोने के वास्तविक गुण डली की हालत में तथा कुण्डल की हालत में एक ही हैं उनमें कोई अन्तर नहीं हुआ, परन्तु डली का आकार बदल कर कुण्डल रूप होगया इस आकार के बदलने की अपेक्षा सोना अनित्य है। सोने में नित्य अनित्य दोनों ही स्वभाव हर समय विरोध रहित पाये जाते हैं। इन दोनों नित्य अनित्य स्वभावों को समझाने का तरीक़ा स्याद्वाद है क्योंकि दोनों स्वभावों को बचनों द्वारा एक साथ नहीं कह सकते, कहते समय यही कहेंगे "स्यात् सुवर्ण नित्य है" अर्थात् किसी अपेक्षा यानी गुणों की अपेक्षा सुवर्ण नित्य है, फिर कहेंगे "स्यात् सुवर्ण अनित्य है" अर्थात् किसी अपेक्षा से यानी पर्याय की अपेक्षा सुवर्ण अनित्य है। इस दृष्टान्त से यह साफ़ हो जाता है कि अनेक स्वभावों के धारक "वस्तु" के समझाने का तरीक़ा स्याद्वाद् अर्थात् अनेकान्त वाद है। इसी लिये पूज्यवर श्री अमृतचन्द्र आचार्य ने अपने पुरुषार्थ सिद्धयुपाय नाम ग्रन्थ की आदि में अनेकान्त वाद को नमस्कार किया है :—

परमागमस्य बीजं निषिद्धजात्यन्ध सिन्धुरविधानम्
सकलनय विलसितानां विरोधमथनंनमाम्यनेकांतम्

मैं परमागम के बीज अनेकांत को नमस्कार करता हूं, जिसने जन्मान्धों द्वारा जाने हुए हाथी के कल्पित विधान को दूर कर दिया है और भिन्न २ नयों अर्थात् अपेक्षाओं के विरोध को मिटा दिया है। कुछ अन्धे एक हाथी को देखने के लिये गये, एक ने हाथी के कान को छू कर कहा हाथी छाज जैसा है, एक ने हाथी के सूंड मात्र को छू कर ही निश्चित कर लिया कि हाथी मूसल जैसा है, एक तीसरे ने हाथी की टांग को छूकर समझ लिया कि हाथी थंभ सारिखा है, इस प्रकार जब तीनों ने अपने२ अनुभव का मिलान किया तो विरोध के कारण झगड़ने लगे एक देखने वाले ने जिसने हाथी के सर्वांग स्वरूप को देखा था उनको समझाया और कहा भाई विरोध न करो भिन्न२ अंगों की अपेक्षा तुम में से प्रत्येक ठीक हैं परन्तु एक अंग मात्र को हाथी नहीं कहते, हाथी सर्वांग होता है अर्थात् इन समस्त अंगोपांग के समुदाय का नाम हाथी है। ठीक इसी प्रकार जिनागम में वस्तु को अनेकान्त रूप बताया है। ऐसे आगम का वक्ता ही सच्चा आप्त होता है, जिसका वर्णन इस ग्रन्थ के आगे के श्लोकों में किया गया है।

**दोषा वरण मुक्तात्मा कृत्स्नं वेत्ति यथास्थितम्।**
**सोऽहं स्तत्वागमं वक्तु यो मुक्तोऽनृत कारणैः॥२**

अन्वयार्थ- (दोषा वरणमुक्तात्मा) रागादि दोष और ज्ञाना-वरणादि कर्मों से रहित आत्मा (यथा स्थितम्) यथार्थ स्वरूप में रहने वाले (कृत्स्नं) समस्त पदार्थ समूह को (वेत्ति) जानता है (यः) जो (ऽनृत कारणैः) मिथ्या भाषण के कारणों से (मुक्तः) छूटा हुवा है (सः) वही (तत्वागमं) तत्वों से परिपूर्ण आगम को (वक्तुं) कहने के लिये (अर्हं) योग्य होता है।

भावार्थ- वास्तव में यथार्थ वक्ता सर्वज्ञ वीतरागी ही होता है। क्योंकि रागी द्वेषी वक्ता का उपदेश अपना तथा दूसरे का राग द्वेष पुष्ट करने के निमित्त ही होता है। रागी द्वेषी के स्वाधीनपना नहीं होता। वह सदैव आकुलित और भयवान रहता है। जो काम, क्रोध, संग्राम आदि अहिंसा प्रधान क्रिया को करके और पर के अहित की प्रवृति करते कराते हैं उनके सत्यार्थ वक्ता पना नहीं होता। जिनके इन्द्रिय विषय भोगादिक की लालसा बनी रहती है, जो निरन्तर कनक कामिनी में आसक्त रहते हैं, जिनके संसारी बन्धनों के कारण अनेक प्रकार की आकुलतायें नी रहती हैं, जो अल्पज्ञ हैं, जिनका ज्ञान इन्द्रिय आधीन , जिनकी आत्मा के ऊपर मिथ्यात् और अज्ञान का निबिड़ हा तम (घोर अन्धकार) छाया रहता है, वह सत्यार्थ क्ता कैसे हो सकता है। राग द्वेष का धारक अभिमानी,

विषय लंपटी तथा अपनी पूजा ख्याति चाहने वाला कैसे सत्यार्थ वक्ता हो सक्ता है रागी द्वेषी कभी सत्य पदार्थ का निरूपण नहीं कर सकता। भय से, लोभ से, या आशा से वह अर्थ का अनर्थ कर देता है। वस्तु के विपरीत भाव का प्रतिपादन कर जगत के भोले भाले जीवों को ठगता है। आप ठगा जाता है। यह बात भी निर्विवाद सिद्ध है कि जिस आगम में पक्षपात पाया जावे, जिसका वादी प्रतिवादी द्वारा खंडन किया जा सके, जो युक्ति और प्रमाण की कसौटी पर न ठहर सके जो वस्तु के निज स्वरूप तथा परभाव का निर्णय नहीं कर सके, जो हेय उपादेय, कृत्य अकृत्य, देव कुदेव, गुरु कुगुरु, धर्म अधर्म, हित अहित, भक्ष्य अभक्ष्य का निर्णय कर वस्तु के यथार्थ स्वरूप को नहीं बता सके, जो केवल शब्दों का हेर फेर कर लोक रंजन, असत्य कुकथा तथा संसार में भ्रमण कराने वाली अनेक विकथाओं की रचना करता है, जो संसार से उद्धार करने का यथार्थ उपाय बताने में असमर्थ है उसका कहा हुआ उपदेश आगम नहीं हो सकता। वह तो केवल शब्दों का आडम्बर है वस्तु के यथार्थ स्वरूप का प्ररूपण उस में नहीं है।

आज संसार में जो अनेक मिथ्या मतमतांतर प्रचलित हो रहे हैं और अनेक भ्रष्टाचार की प्रवृत्ति हो रही है

वह सब भेष धारी, कुलिंगी व्यक्तियों द्वारा रचित अनेक कल्पित शास्त्रों के आधार पर ही हो रही है। परीक्षा प्रधानी को उचित है कि परीक्षा पूर्वक आगम को ग्रहण करे, आगम सर्वज्ञ वीतरागी हितोपदेशी द्वारा कथित ही मानने योग्य होता है। ऐसे ही आगम में जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन सात प्रयोजनभूत तत्वोंका स्वरूप पाया जाता है। अपने शुद्ध स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करने के लिये इन सातों तत्वों का जानना बड़ा जरूरी है, यह सातों तत्व सर्वज्ञ प्रणीत हैं। अल्पज्ञ पदार्थों की त्रिकाल वर्ती परिणति को युगपत जानने में असमर्थ होते हैं, वस्तु के यथार्थ स्वरूप का वह निरूपण नहीं कर सकते इस लिये सर्वज्ञ द्वारा प्रतिपादित तत्व ही प्रमाणीक हैं—तत्व सात ही होते हैं, कम ज्यादह नहीं।

आत्मा का वास्तविक हित सुख शान्ति प्राप्त करना है, सुख शान्ति आत्मा का निज स्वभाव है आत्मा का स्वभाव द्रव्य अपेक्षा से शुद्ध है, परन्तु संसार अवस्था में अनादि काल से कर्म मे बन्ध के कारण मैला चला आ रहा है, आत्मा का पूर्ण हित इसमें है कि आत्मा ज्ञाना-वर्णादि अष्ट द्रव्य कर्म, राग द्वेष आदि भाव कर्म तथा शरीरादि नो कर्म रूपी मल से सर्वथा रहित हो, अपने अविनाशी शुद्ध चिदानंद रूप में स्थिर हो, पूर्ण स्वाधी-

नता को प्राप्त हो। आत्मा की इसी अवस्था का नाम मोक्ष है। इस कर्म रहित शुद्ध आत्मा को ही परमात्मा कहते हैं जब आत्मा पूर्ण मुक्त अवस्था में होता है तो अपने निज स्वभाव में मग्न होकर निजानन्द का ही भोग करता है। इस मुक्त अवस्था को ही परम ध्येय मान कर इन सात तत्वों का निरूपण किया गया है। इन तत्वों द्वारा यही तो बताया गया है कि वास्तव में स्वभावतः आत्मा शुद्ध है, कर्मों के संयोग से अशुद्ध हो रहा है, इन कर्मों का आत्मा से कैसे संयोग होता है, और कैसे इन कर्मों का वियोग होता है, और सर्वथा कर्म रहित होने पर ही यह संसारी आत्मा परमात्म पद को प्राप्त होता है। एक चतुर न्यारिये के लिये यह जानना जरूरी है कि खोटा अशुद्ध सोने का क्या स्वरूप है, खोट क्या है, खोट कैसे मिलता है, खोट के मिलने को कैसे रोका जा सकता है मिले हुवे खोट को कैसे दूर करके सोने को बिलकुल शुद्ध बनाया जा सकता है और शुद्ध सोने का वास्तविक स्वरूप क्या है। ठीक इसी प्रकार एक सच्चे मुमुक्षु के लिये यह जानना जरूरी है कि आत्मा (जीव) क्या है अजीव (कर्म) क्या है? जीव की ओर कर्म क्यों और कैसे आते हैं (आस्रव) आत्मा के साथ उनका संबन्ध कैसा है और क्यों है? (बन्ध), आत्मा की ओर आते हुवे कर्मों को

कैसे रोका जा सकता है (संवर) बन्धे हुवे कर्मों को आत्मा से दूर कैसे किया जा सकता है (निर्जरा) सर्वथा कर्म रहित होने पर शुद्धात्मा को क्या दशा होती है (मोक्ष)। इन ही सातों को जैनाचार्यों ने सप्त तत्वों के नाम से कहा है इनका ज्ञान होना बहुत जरूरी है इनको जानने से ही हम अपने आत्मा को शुद्ध बनाने का उपाय कर सकते हैं।

यह लोक जीव अजीव द्रव्यों का समुदाय है, जहां जीव अजीव द्रव्य दिखाई पड़ते हैं उसे लोक कहते हैं। यह बात भी अनुभव सिद्ध है कि सत् का कभी विनाश नहीं होता और असत् का उत्पाद नहीं होता। जगत में किसी द्रव्य की केवल पर्यायों या अवस्थाओं का नाश तथा जन्म होता रहता है परन्तु मूल द्रव्य सदैव बना रहता है। सोने के ज़ेवर, कड़े, कुन्डल, चेन आदि बनाये जावें या बिगाड़े जावें तो सोना बना ही रहेगा। किसी द्रव्य को कोई भी अवस्था पहली अवस्था को ही बिगाड़ कर बनेगी। जिस समय एक अवस्था बिगड़ती है उसी समय दूसरी अवस्था बनती है। इस प्रकार का परिणमन संसार के समस्त ही पदार्थों में होता रहता है। जगत का सब व्यवहार इसी हेतु से चल रहा है। द्रव्य की पर्यायों का ही परिणमन हुआ करता है। मूल द्रव्य सदैव बना रहता है, मूल द्रव्य का न कभी विनाश

होता है और न कभी उत्पाद होता है। इस से यह बात सिद्ध होती है कि जीव अजीव द्रव्य मूल में न उपजते हैं, न विनशते हैं; तब यह लोक जो इन जीव अजीव द्रव्यों का समुदाय है यह भी न कभी उपजा है और न कभी विनशेगा यह लोक अनादि व अनन्त है अकृत्रिम है, न कोई इसका कर्ता है न हर्ता है। युक्ति और प्रमाण से भी यह सिद्ध नहीं होता कि परमब्रह्म, परमेश्वर, परमात्मा सर्वदर्शी, परम ज्योति स्वरूप निर्विकार ईश्वर इस जगत का कर्ता हर्ता है; यह जगत तो अनादि निधन है।

यह जगत मूल द्रव्यों की अपेक्षा सत् रूप है। नित्य है, अकृत्रिम है, अनादि अनन्त है, स्वतः सिद्ध है। इस अनादि जगत में तत्वों का उपदेश भी प्रवाह की अपेक्षा अनादि है, अनभिज्ञ भव्य जीवों को समझाने के लिये, धर्म मार्ग चलाने के लिये इन तत्वों के विशेष कथन की आवश्यकता है। इन तत्वों के कथन से और इनके वास्तविक स्वरूप को समझने से भव्य जीवों को यह निश्चय हो जाता है कि यह जीव संसार में दुःखी क्यों है, और इस दुःख से छुटकारा पाने का क्या उपाय है।

जीव तत्व—जो चेतना लक्षण सहित विराजमान हो उसे जीव तत्व कहते हैं। जीव दो प्रकार के होते हैं संसारी और मुक्त। जो जीव कर्म सहित हैं वे संसारी हैं, जो कर्मों

से सर्वथा रहित हो गये हैं वे मुक्त जीव कहलाते हैं। कर्मों के उदय से ही जीव की अवस्था संसार में अशुद्ध तथा पर संयोग रूप हो रही हैं। कर्म आठ होते हैं ज्ञानावरणी, दर्शनावरणीय, मोहनीय, अन्तराय, आयु, नाम, गोत्र, और वेदनीय।

ज्ञानावरण के उदय से ज्ञान छिपा रहता है, दर्शनावरण के उदय से दर्शन शक्ति दबी रहती है। मोहनी कर्म के उदय से मिथ्या श्रद्धान व क्रोधादि कषाय रूप जीव के भाव होते हैं, अन्तराय कर्म के उदय से आत्म बल प्रकट नहीं होता। ये चारों कर्म घातिय कर्म कहलाते हैं क्योंकि यह जीव के गुणों को अशुद्ध कर देते हैं, बाकी चारों कर्म अघातीय कहलाते हैं, वे आत्मा के चारों गुणों का घात न कर जीवों की बाहरी अवस्था का ही निर्माण करते हैं। आयु कर्म जीव को शरीर में रोके रखता है, नाम कर्म शरीर की शुभ या अशुभ रचना करता है। गोत्र कर्म जीव को लोक द्वारा पूजित या लोक निन्द्य कुल में जन्म कराता है। वेदनीय कर्म साताकारी तथा असाताकारी सामग्री का संबन्ध जुटाता है। जब तक इन कर्मों का संबन्ध आत्मा के साथ बना रहता है, यह संसारी जीव स्वाधीन नहीं हो पाता, पराधीन ही रहता है, जन्म मरण, रोग, शोक, खेद क्लेश आदि दुःखों को

भोगा करता है, स्वतंत्रता पूर्वक अपने ज्ञान दर्शन वीर्य, सुख आदि गुणों का आस्वादन नहीं कर सकता। इसी लिये प्रत्येक संसारी जीव को यह जान लेना ज़रूरी है कि इन कर्मों का संयोग जीव से क्यों और कैसे होता है इनसे मुक्त कैसे हो सकता है। जिन तत्वों में यह प्रयोजन भूत ज्ञान हो उन्हीं तत्वों को प्रयोजन भूत तत्व कहते हैं। अनादि काल से इन कर्मों का संबन्ध आत्मा के साथ चला आरहा है बन्ध होता है, पुराना कर्म फल देकर झड़ जाता है, इस क्रिया की अपेक्षा बन्ध सादि है। जैसे बीज से वृक्ष और वृक्ष से बीज, और फिर उस बीज से वृक्ष होता है। बीज वृक्ष की संतान अनादि है ठीक उसी तरह राग द्वेष मोह पूर्व बद्ध कर्म के उदय से होते हैं राग द्वेष मोह से फिर बन्ध होता, बन्ध से फिर राग द्वेष मोह होते हैं।

आत्मा स्वभाव से रागादि रूप पर भाव का व पर कार्य का कर्त्ता नहीं है, और न ही भोक्ता है, मन बचन कायके निमित्त से योग होता है, आत्मा में सकम्प होता है इस से योग शक्ति काम करती है। यह योग भी नाम कर्म के उदय से वर्तन करता है, योग से क्रिया होती है अशुद्धोपयोग से जो मोह के उदय से होता है क्रिया होती है, योग और उपयोग ही कर्ता व भोक्ता हैं।

यदि योग और उपयोग न हों तो आत्मा परभाव का व पर कार्य का व पर वस्तु का कर्त्ता व भोगता नहीं होगा स्वभाव से यह अपने ही शुद्ध भाव का कर्ता व भोक्ता है।

यदि जीव के स्वरूप का विचार अजीव (कर्म) से भिन्न किया जावे तो यह सर्वथा शुद्ध है। सिद्ध भगवान के समान अपने शुद्ध पूर्ण ज्ञान दर्शन वीर्य सुख आदि गुणों का धारी है। वर्णादि रहित अमूर्तीक है। लोकाकाश समान असंख्यात प्रदेशी है, यह जीव अनेक साधारण तथा असाधारण गुणों और स्वभावों का धारक अखंड पिंड है। अपने द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा अस्तिरूप है। पर द्रव्य क्षेत्र काल की अपेक्षा नास्तिरूप है।

कर्मोदय से संसारी जीव नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देव इन चार गतियों में भ्रमण किया करता है, नारकियों व देवों के बाहरी स्थूल शरीर वैक्रियक होता है। तिर्यंच और मानवों का बाहरी शरीर औदारिक होता है इन शरीरों की स्थिति प्राणों पर निर्भर होती है—प्राण दस होते हैं—मन, बचन, काय, तीन बल स्पर्शन; रसना घ्राण, चक्षु और कर्ण पांच इद्रियें, आयु और श्वासोस्वास। देवों नारकियों तथा मनुष्यों के तो सब दसों प्राण होते हैं। तिर्यंचों के नीचे लिखे हुए भेद होते हैं:—

१—एकेन्द्रिय जीव—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु वनस्पति,

कायिक इन के चार प्राण होते हैं। स्पर्शन इंद्रिय, शरीर बल, आयु और श्वासो श्वास।

२—दोइन्द्रिय जीव—लट आदि इनके ६ प्राण होते हैं। स्पर्शन, रसना इन्द्रियें शरीर और बचन बल, आयु और श्वासो श्वास।

३—तेइन्द्रिय जीव—चींवटी आदि इनके सात प्राण होते हैं। एक घ्राण इन्द्रिय बढ जाती है।

४—चार इन्द्रिय जीव—मक्खी आदि इनके आठ प्राण होते हैं। एक चक्षु इन्द्रिय बढ जाती है।

५—पंचेन्द्रिय असैनी मन रहित—पानी का कोई सर्प—इसके नौ प्राण होते हैं। एक कर्ण इन्द्रिय और बढ जाती है।

६—पंचेन्द्रिय असैनी—गाय, भैंस, कबूतर, मोर, मगर-मच्छादि इनके दस प्राण होते हैं। मन बल बढ जाता है।

इन प्राणों की स्थिति बने रहने को जीवन कहते हैं, इन के वियोग का नाम मरण है, संसारी जीव अपने मन वचन काय इन योगों की चपलताई के कारण तथा कषाय भावों से कर्म बान्धते रहते हैं और उनका सुख दुखरूप फल भोगते रहते हैं, अज्ञानी जीव उन में लिप्त हो जाते हैं, ज्ञानी उनसे उदासीन रहते हैं।

आत्मा के बहिरात्मा , अन्तरात्मा, परमात्मा भी तीन भेद किये गये हैं:—

वहिरात्मा—जो शरीरादि में आत्माका भाव रखता होवे जिस के ज्ञानादि गुण कर्मावरण से आच्छादित हो रहे हों और जिसकी परिणति निजरूप नहीं परिणमन कर रही है ये मिथ्यादृष्टि अशुद्ध जीव वहिरात्मा कहलाते हैं।

अंतरात्मा—जिनके अन्तरंग में से भ्रम निकल गया हो, जो आत्मा को आत्मरूप और रागादि को कर्म कृत विकार जानते हों वे अन्तरात्मा कहलाते हैं।

परमात्मा जो सर्व कर्म मल रहित हैं, वे परमात्मा हैं। इनके दो भेद हैं, एक सकल परमात्मा अरहन्त परमेष्ठी जीवन्मुक्त परमात्मा, दूसरे निकल परमात्मा अर्थात् सिद्ध परमेष्ठी। वहिरात्मा को छोड़ना चाहिये, अन्तरात्मा होकर परमात्मापद की प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिये।

इस प्रकार जीव तत्व को निश्चय से द्रव्य रूप शुद्ध जानना चाहिये, कर्म की अपेक्षा अशुद्ध जानना चाहिए। इस लिये अशुद्धता के कारण कर्मों का बन्ध दूर कर के जीव को शुद्ध दशा में प्राप्त करना ज्ञानियों का कर्तव्य है। यह जीव स्वयं राग भावों के निमित्त से बन्ध को प्राप्त होता है और आप ही अपने वीतराग भावों से बन्ध से मुक्त होकर शुद्ध हो जाता है।

अजीव तत्व– जो पदार्थ चेतना गुण रहित हों उन्हें अजीव तत्व कहते हैं, इसके पांच भेद हैं–पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल ।

पुद्गल– जिस द्रव्य में रस, गन्ध, स्पर्श, वर्ण यह चार गुण पाये जावें उसे पुद्‌गल कहते हैं पुद्‌गल के दो भेद हैं अणु और स्कन्ध । पुद्‌गल के एकाकी अविभागी (जिस का और खंडन न हो सके) प्रमाणु को अणु कहते हैं । स्कन्ध–दो या दो से अधिक अणुओं के समुदाय को स्कन्ध कहते हैं । बाहरी निमित्तों से प्रमाणुओं से स्कन्ध व स्कन्ध से प्रमाणु बनते रहते हैं । स्कन्ध पुद्‌गल द्रव्य, ६ प्रकार के होते हैं—

(क) स्थूल स्थूल—जो छेदने भेदने तथा दूसरे स्थान पर ले जाने योग्य हों और जो खंड किये जाने पर बिना किसी तीसरी चीज़ के संयोग के आप से न मिल सकें जैसे काष्ठ, पत्थर, कागज, आदि–

(ख) स्थूल—जो छेदने भेदने तथा अलग अलग किये जाने पर तुरन्त ही आपसे मिल सकते हैं, जैसे घी, तेल जल, दूध, आदि ।

(ग) स्थूल सूक्ष्म— जो आंखों से तो दिखाई देवें परन्तु पकड़े न जा सकें जैसे धूप चांदनी आकाश आदि ।

(घ) सूक्ष्म स्थूल—जो आंखों से तो दिखाई देते न हों

परन्तु अन्य चार इन्द्रियों द्वारा जाने जाते हों जैसे वायु, रस, गन्ध, शब्द आदि।

(ङ) सूक्ष्म—जो इन्द्रिय गम्य न हों अर्थात् किसी भी इन्द्रिय द्वारा न जाने जा सकें जैसे कार्माण वर्गणायें

(च) सूक्ष्म-सूक्ष्म—जो कर्म वर्गणाओं से भी सूक्ष्म हों दो अणु के स्कन्ध तक हैं।

धर्म द्रव्य—जो द्रव्य जीव और पुद्गल के चलने में सहकारी होता है उसे धर्म द्रव्य कहते हैं, यह एक अमूर्तिक अखंड, लोकाकाश प्रमाण, असंख्यात प्रदेशी द्रव्य है। इसमें स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण नहीं पाये जाते– जैसे जल बिना किसी प्रेरणा के उदासीन रूप से मछली के तैरने में सहायक होता है, ठीक उसी प्रकार यह धर्म द्रव्य भी जीव और पुद्गल की गति में उदासीन रूप से सहायक होता है।

अधर्म द्रव्य—जो द्रव्य जीव और पुद्गल के ठहरने में सहकारी होता है, उसे अधर्म द्रव्य कहते हैं। धर्म द्रव्य की तरह यह द्रव्य भी एक अखंड, अमूर्तिक लोकाकाश प्रमाण असंख्यात प्रदेशी है। इस में भी स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण नहीं हैं, जैसे धर्म, द्रव्य, जीव और पुद्गल के चलने में सहकारी होता है वैसे ही अधर्म द्रव्य उनके ठहरने में सहकारी होता है जैसे छाया पथिकों के ठहरने में उदासीन

रूप से सहकारी होती है वैसे ही अधर्म द्रव्य उदासीन रूप से जीव पुद्गल द्रव्य के ठहरने में सहायक होता है।

आकाश द्रव्य—जो द्रव्य सब द्रव्यों को अवकाश देने की शक्ति रखता है उसे आकाश द्रव्य कहते हैं। यह एक सबसे बड़ा अमूर्तिक द्रव्य है। इसके दो भेद हैं, एक लोकाकाश, दूसरा अलोकाकाश। जहां जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, और काल, यह पांच द्रव्य पाए जाते हैं वह लोकाकाश कहलाता है, और जहां यह नहीं पाए जाते केवल आकाशही आकाश पाया जाता है वह अलोकाकाश कहलाता है इन दोनों का सत्व जुदा जुदा नहीं है। द्रव्य एक है क्यों कि जुदा होने से अलोकाकाश में काल न होने के कारण परिणमन न होगा और अपरिणामी होने से द्रव्य का विनाश होजायगा।

काल द्रव्य—जो द्रव्य सब द्रव्यों के परिवर्तन करने में समर्थ है औ जो निश्चय से वर्तना हेतुत्व लक्षण से संयुक्त है, उसे काल द्रव्य कहते हैं, "जैसे रत्नों का ढेर सब स्थान रोक कर भी भिन्न २ रत्न को रखता है वैसे ही कालाणु सब लोकाकाश में एक२ प्रदेश एक२ करके व्याप्त हैं, तथापि वह कभी किसी से मिलते नहीं हैं।"

निश्चय काल से द्रव्यों का परिणमन होता है। द्रव्यों के परिणमन से व्यवहार काल का ज्ञान होता है, जिससे

निश्चय काल का बोध होता है। घड़ी, घंटे, मिनिट आदि व्यवहार समय पुद्गलों के परिणमन से ही उत्पन्न होता है। निश्चय काल परिणमन के उत्पन्न करने में सहकारी कारण है। व्यवहार काल इस निश्चय काल की पर्यायहै। सूक्ष्म व्यवहार काल एक समय है पुद्गल का एक परमाणु जब मंद गति से एक कालाणु से दूसरे निकटवर्ती (Next) कालाणु पर जाता है तब समय पर्याय उत्पन्न होती है यह समय ही व्यवहार काल है जो कालाणु की पर्याय है।

जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल यह छः द्रव्य हैं, इनमें से काल बहु प्रदेशी नहीं है, बाकी पाँचों द्रव्यों को बहु प्रदेशी होने के कारण पंचास्ति काय कहा जाता है। यह छहों द्रव्य नित्य अविनाशी हैं, इन की संख्या स्थिर है, किसी विशेष समय न कोई द्रव्य पैदा हुआ है, न कभी कोई द्रव्य नष्ट होगा। न एक द्रव्य कभी दूसरे में मिल जायगा, न छह द्रव्यों के कभी सात आठ द्रव्य होंगे। यह छहों द्रव्य सत् रूप अनादि अनन्त हैं।

जीव और पुद्गल चलने ठहरने, अवकाश पाने, तथा पर्याय पलटने का मुख्य कार्य जगत में किया करते हैं, उनके इन चारों कामों में शेष चार द्रव्य क्रम से सहायक

होते हैं। यह नियम है कि प्रत्येक कार्य के लिये उपादान और निमित्त इन दोनों कारणों की आवश्यकता है। उपादान कारण तो जीव और पुद्गल आप ही हैं; निमित्त कारण गमनादि में धर्मादि शेष चार द्रव्य हैं। इस प्रकार जीव और अजीव तत्व का स्वरूप जान लेने से यह बोध हो जाता है कि यह लोक छह द्रव्यों का समुदाय है। इन छह द्रव्यों के सिवाय लोक में अन्य कुछ भी नहीं है।

आस्रवतत्व—जीव के रागादिक परिणामों के कारण मन वचन काय के योगों द्वारा, पुद्गल परमाणुओं के आने को आस्रव कहते हैं। आस्रव दो प्रकार का होता है भावास्रव और द्रव्यास्रव।

भावास्रव— आत्मा के जिन रागादि परिणामों से पुद्गल द्रव्य कर्म रूप होते हैं, उन भावों के होने को भावास्रव कहते हैं। भावास्रव के पांच भेद हैं। पांच मिथ्यात्व, बारह अविरति, पच्चीस कषाय, और पंद्रह योग, कुल=५+१२+२५+१५=५७ (विशेष के लिये देखो तत्वार्थ सूत्र अध्याय ६ )

द्रव्यास्रव— ऐसे पुद्गल परमाणुओं का कि जिन में ज्ञानावरणादि कर्म रूप होने की शक्ति होती है आत्मा के साथ एक क्षेत्रावगाही होने के लिये आना द्रव्यास्रव कहलाता है।

आस्रव दुखदाई होता है बुद्धिवान पुरुष इसे कर्म बन्ध का कारण जान सदैव ही इसके कारणों से विमुख रहा करते हैं ।

बन्धतत्व—जीवों के अशुद्ध भावों के कारण खिंचे हुवे पुद्गल परमाणुओं का, ज्ञानावरणादि रूप, अपनी स्थिति सहित, अपने२ रस संयुक्त, आत्म प्रदेशों के साथ सम्बन्ध रूप होने का नाम बन्ध है। बन्ध दो प्रकार का होता है एक द्रव्यबन्ध, दूसरा भावबन्ध ।

द्रव्यबन्ध— पुद्गल कार्माण जाति की वर्गणाएँ समस्त लोक में फैली हुई हैं, इन वर्गणाओं का आत्मा की योग शक्ति परिणमन से खिंच कर आत्माके प्रदेशों के साथ परस्पर एक क्षेत्रावगाही संबन्ध कर लेने का नाम द्रव्यबन्ध है।

भाव बंध—उपर्युक्त द्रव्य बंध के निमित्त कारण आत्मा के शुभ और अशुभ परिणाम हैं, इन भावों को भाव बंध कहते हैं।

बंध के चार भेद हैं। प्रकृति बंध, प्रदेश बंध, स्थिति बंध, अनुभाग बंध। इनमें से प्रकृति बंध और प्रदेश बंध तो मन बचन काय योगों की क्रिया से होते हैं और स्थिति बंध और अनुभाग बंध क्रोध, मान, माया, लोभ कषायों से होते हैं ( विशेष के लिए देखो तत्वार्थ सूत्र

संवर तत्व—जीव के रागादिक अशुद्ध परिणामों के अभाव होजाने से कर्म परमाणुओं के आस्रव का रुक जाना संवर तत्व कहलाता है। संवर भी दो प्रकार का होता है, भाव संवर और द्रव्य संवर। निर्मल शुद्ध आत्माके अनुभव के बल से शुभ तथा अशुभ भावों का रुकना भाव संवर है। व्रत समिति, गुप्ति, दशधर्म, बारह भावना आदि सब भाव संवर के ही भेद हैं। द्रव्य कर्मों के आस्रव के रुक जाने को द्रव्यसंवर कहते हैं।

निर्जरा तत्व— जीव के शुद्धोपयोग के बल से, अथवा स्थिति पूर्ण होजाने से, बन्धे हुए कर्मों के एकोदेश नाश होने को निर्जरा कहते हैं। यह निर्जरा दो प्रकार की होती है। सविपाक निर्जरा, और अविपाक निर्जरा।

सविपाक निर्जरा— स्थिति पूर्ण होजाने पर पूर्व बद्ध कर्मों का उदय में आकर फल देकर या बिना निमित्त पाए यूँही झड़ जाना "सविपाक निर्जरा" है यह सब ही संसारी जीवों के होती है। यह निर्जरा मोक्ष का कारण भूत नहीं होती।

अविपाक निर्जरा— पूर्व बद्ध कर्मों की स्थिति पूर्ण हो जाने से पहले ही, तपश्चरण आदि द्वारा बिना फल दिए, गिरा देने का कारण अविपाक निर्जरा है, यह निर्जरा

मोक्ष का कारणभूत होती है, यह निर्जरा रत्नत्रय गर्भित वीतराग भावों से होती है। जितने अंशों में वीतरागता होती है, उतने अंश पूर्व बद्ध कर्म रस रहित होकर गिरते जाते हैं। निर्जरा का मुख्य उपाय भेद विज्ञान तथा आत्म विचार है।

जिन परिणामों से कर्मों का आत्मा से झड़ना होता है वह भाव निर्जरा है। पूर्व बद्ध कर्म पुद्गलों का रस रहित होकर आत्मा के प्रदेशों से झड़ जाने तथा बन्ध स्वरूप न रहने का नाम द्रव्य निर्जरा है। अविपाक निर्जरा के लिए बारह प्रकार के तप का अभ्यास करना मुख्य है।

मोक्ष तत्त्व—जीव के समस्त कर्मों के सर्वथा नाश होने और उसके शुद्ध निर्मल सच्चिदानन्द रूप निज स्वभाव के प्रगट होने को मोक्ष कहते हैं। द्रव्य कर्मों के आत्मा से जुदा होने को द्रव्य मोक्ष कहते हैं, आत्मा का जो परिणाम आत्मा के समस्त कर्मों का क्षय होने का कारण है वह भाव मोक्ष है।

मोक्ष प्राप्त आत्माओं में न तो मन वचन काय द्वारा योग होता है न राग द्वेष मोह भाव होते हैं। इस लिए नवीन कर्मों के आस्रव बन्ध का अभाव होजाता है। संसार भ्रमण से सदैव के लिए मुक्त हो जाता है, जैसे बीज के जल जाने से फिर उस से वृक्ष का अंकुर नहीं फूटता वैसे

ही कर्म रूपी बीज के दग्ध हो जाने पर संसार रूपी अंकुर फिर पैदा नहीं होता है। सिद्ध भगवान आकार सहित होते हैं। आकार का अभाव नहीं होता, जिस शरीर को छोड़ कर वह सिद्ध होते हैं, उस के समान आत्मा का आकार बना रहता है। नाम कर्म के संयोग से ही आत्मा के प्रदेशों का संकोच विस्तार होता था। सर्व कर्मों का अभाव होजाने पर सिद्ध भगवान के आत्म प्रदेशों का संकोच विस्तार नहीं होता। पुरुषाकार ज्ञान रूप बना रहता है।

वास्तव में विचार किया जाय तो इन सात तत्वों में जीव और पुद्गल का ही संयोग है जीव और पुद्गल दो ही द्रव्य हैं। इन में से पुद्गल मेरा स्वरूप नहीं है, इस लिए वैराग्य के योग्य है, मैं जीव हूं, शुद्ध चेतन स्वरूप हूं, ऐसा श्रद्धान करना निश्चय सम्यक्त है, इस निश्चय सम्यक्त की प्राप्ति के लिए सात तत्वों का श्रद्धान निमित्त कारण है, इसी लिए इस को व्यवहार सम्यक्त कहते हैं।

सम्यक्त्व मोक्ष का बीज भूत कारण है, ऐसे सत्य सप्त तत्वों का स्वरूप आगम में होता है जिसका वक्ता सर्वज्ञ वीतराग ही हो सकता है।

( ३ )

आगमो ह्याप्त वचनमाप्तं दोष क्षयं विदुः
त्यक्त दोषोऽनृतं वाक्यं न ब्रूयादित्य सम्भवात् ।३।

अन्वयार्थ—(आगमः हि आप्त वचनं) आगम निश्चय से आप्त के वचन को कहते हैं, (आप्तं दोष क्षयम् विदुः) आप्त उसे कहते हैं जिसके सब दोष क्षय हो गये हों (त्यक्त दोष, अनृतं वाक्यं न ब्रूयात् ) दोष रहित असत्य वचन नहीं कह सकता है। (इति असम्भवात् ) यह बात संभव नहीं है कि दोष रहित व्यक्ति असत्य बोले।

( ४ )

रागाद्वा द्वेष मोहाद्वा वाक्य मुच्यते ह्यनृतम् ।
यस्य तु नैवच दोषा स्तस्या नृत कारणं नास्ति ।४।

अन्वयार्थ—(रागात्वा द्वेष मोहात्वा) राग से द्वेष से या मोह से (अनृतं वाक्यं हि उच्यते) असत्य वचन वास्तव में कहा जाता है (तु) परन्तु (यस्य दोषः नैव च) जिस आप्त के पास राग द्वेष मोहादि दोष निश्चय से नहीं हैं (तस्य अनृत् कारणं नास्ति) उस आप्त के लिये असत्य कहने का कोई कारण नहीं है।

भावार्थ—निश्चय से सर्वज्ञ, वीतराग, हितोपदेशी देव का कहा हुवा शास्त्र ही सच्चा आगम है अरहन्त भगवान ही में यह विशेषण पाये जाते हैं वे सर्वथा निर्दोष हैं, वह अज्ञान विषय कषायादि समस्त दोषों को सर्वथा नष्ट कर आप्त पद को प्राप्त हुवे, उन्हीं के वचनों को आगम कहते हैं कोई भी शास्त्र जिस का आधार अरहन्त भगवान के

वचनों पर है माननीय तथा पूजनीय हैं, वास्तव में देखा जावे तो संसार के अन्दर जितना अनर्थ होता है, और जितना भी असत्य का प्रचार होता है वह सब अज्ञान, विषय और कषाय से ही होता है, प्रत्यक्ष देखने में आता है कि विषय लम्पटी अभिमानी मिथ्या दृष्टियों ने ही अपने विषय कषाय की पुष्टि के निमित्त अनेक खोटे शास्त्रों की रचना कर कितने ही भोले भाले जीवों को सत्यार्थ धर्म से भ्रष्ट कर डाला है। हिंसा में धर्म बताया है; साक्षात् हिंसामय यज्ञ विधान को मुक्ति मार्ग बता कर भोले भाले दीन मूक पशुओं का संहार धर्म माना जाता है। देवताओं तथा अन्य पित्र व्यन्तरादिकों की तृप्ति के निमित्त मांस पिंड बलिदान देने में धर्म बताया जाता है । कामी, क्रोधी, लोभी, दम्भी, शस्त्रधारी देवी देवताओं की उपासना में धर्म बताया जा रहा है । लोगों को ठगने के लिये अनेक मिथ्या प्ररूपणा का प्रचार किया जा रहा है। आज कितने ही ग्रन्थ अल्पज्ञों द्वारा रचे जा रहे हैं और पहले भी रचे गये हैं जिनमें जीवों की हिंसा का प्रतिपादन किया गया है; मांस खाने, मदिरा पीने, जलचर थलचर तथा नभचर जीवों के मारने के अनेक उपाय; महा आरम्भ के, मारण उच्चाटन करने के, दूसरों का धन ज्यों त्यों करके हरण करने का, और परिग्रह

परस्त्री में रुचने का उपाय वर्णन किया गया है, और उन को धर्म शास्त्र माना है। वे सब आगम नहीं कहला सकते इन से जीवों का कोई कल्याण नहीं हो सकता।

जो रसना इन्द्रिय का लंपटी होता है, नाना प्रकार के स्वादिष्ट ब्यञ्जनों को आशा जिसको लगी हुई है, जिसे नाना प्रकार के मन को हरण करने वाले राग रागनियां सुनने का शौक़ हो, जो अपना यश प्रशंसा सुनने का इच्छुक हो, अभिमानी हो, कर्ण इन्द्रिय का गुलाम हो, जो नेत्र इन्द्रिय के वशीभूत हो सुन्दर २ दृश्यों को देखने वन उपवन बाग़ बागीचे की सैर करने का अभिलाषी हो, मृदु भाषिणी मनोहराङ्ग कामिनियों की चाह में दग्ध होने वाला हो; जो कोमल शय्या, कोमल ऊंचे आसन पर बैठने सोने का इच्छुक हो, जो गर्मी में बिजली के पंखों के नीचे बर्फ से ठंडे किये कमरों में या अन्य ठंडे पहाड़ी स्थानों पर रहने और मौज उड़ाने का इच्छुक हो, सर्दियों में बिजली के आतापन यंत्र (heater) द्वारा गर्म कमरों में सोने बैठने का इच्छुक हो; जो चाहे कि उसे सुगन्धित से सुगन्धित फूल, अतर लैवेन्डर आदि नित प्रति सूंघने को मिलें; ऐसा विषय लम्पटी साधु महंत कैसे आप्त हो सकता है और वह दूसरों को विषयों से हटाय वीतराग मार्ग में कैसे लगा सकता है, वह तो

वीतरागता को समझता ही नहीं, वीतराग भाव उसको रुचता नहीं। जहां इन्द्रिय सुख होता है वहां मोक्ष सुख नहीं होता और जहाँ मोक्ष सुख होता है वहां विषय सुख नहीं होता है। विषय सुख विनाशीक है, इसकी सीमा सदैव संकुचित होती है, इसकी वासनायें अति नीरस, मलीन और सार रहित होती हैं।

इन्द्रिय भोग महा दुखदायी हैं, क्षण भंगुर हैं, परावलम्बी हैं। विषया लंपटो पुरुष की बुद्धि विपरीत हो जाती है, वह पाप कर्म में प्रवीण हो जाता है, अनीति में तत्पर हो जाता है, विवेक जाता रहता है, ऐसे पुरुषों को धर्म का श्रद्धान स्वप्न मात्र में भी नहीं होता है। जब विषय लंपटियों की ऐसी दशा हमें प्रत्यक्ष दिखाई दे रही है तो उनके आप्त पना कैसे संभव हो सकता है उनके वचन सत्यार्थ कैसे हो सकते हैं? वह अपनी इच्छाओं की पूर्ति के निमित्त रागादि परिणामों से अन्धे होकर सत्य असत्य के भेद को ही भुला बैठते हैं।

संसारी दशा में किसी न किसी अंश में कषाय संसारी जीवों के पाये ही जाते हैं। अरहन्त परमात्मा में जो जीवन्मुक्त होते हैं उनका अभाव होता है। कषाय २५ होते हैं क्रोध, मान, माया, लोभ। इन चारों में से प्रत्येक के चार भेद अनन्तानुवंधी, प्रत्याख्यानावरण,

अप्रत्याख्यानावरण, संज्वलन रूप होते हैं। इस प्रकार इनके १६ भेद तो यह हुवे, नव नो कषाय होते हैं हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्री वेद, पुरुष वेद, नपुंसक वेद। यह कषाय ही इस जीव के लिये कर्म बन्ध का कारण हैं। इन कषायों के वशीभूत होकर ही एक संसारी जीव अनेक शुभाशुभरूप क्रियायें किया करता है और उनके फल रूप चतुर्गति रूप संसार में परिभ्रमण किया करता है, जब कषायों से निवृत्त होता है तभी जाकर कर्मों का बन्ध टूटता है क्रोध के वशीभूत होकर जीव परका बुरा विचारता है, मारन ताडन के अनेक यंत्र तंत्र रचता है। क्रोध के समान जीव का कोई शत्रु नहीं। मान के वशीभूत होकर अपनी प्रतिष्ठा व पर का अपमान चाहते हैं। दूसरों को नीच समझते हैं, दीन हीन जान कर उन्हें दासत्व की दृढ़ श्रृंखलाओं में जकड़ना चाहते हैं, उन के जीवन का कुछ मूल्य ही नहीं समझते। माया के फंदे में पड़ कर अनेक प्रकार के प्रपंच रच दूसरों को अपने वशीभूत कर अपना स्वार्थ साधन करते हैं; मनमें कुछ होता है कहते कुछ हैं और करते कुछ और ही हैं। जब बात करते हैं मायाचारी से, कोई भी व्यवहार मायाचारी से बचा हुवा नहीं, प्रत्येक कार्य में मायाचारी की दिखावट होती है।

लोभाकुलित होकर यह जीव पाँचों इन्द्रियों के विषयों की तृप्ति के लिये अन्याय द्वारा पर को त्रास पहुंचा कर भी स्वार्थ का साधन करते हैं, ये चार कषाय बन्ध के कारण हैं। साधर्मी भाई बहिन व अति दीन दुखी जीवों का मज़ाक उड़ाते हैं बहुत वृथा बकवास करके अट्टहास करते हुवे समय का नाश करते हैं। नाना प्रकार के खेल तमाशे आप करते कराते हैं दूसरों को उनमें लगाते हैं, व्रत शील पालन से अरुचि करते हैं, दूसरों का मन औरों से खट्टा कराते हैं, दूसरों के आराम की चीज़ों में अन्तराय डालते हैं, पुण्य कर्मों से छुड़ाय पाप कर्मों की ओर उनकी प्रवृत्ति कराते हैं। स्वयं शोक करते हैं उदास रहते हैं, दूसरों को शोकित करते हैं या औरों को शोकित देख कर रञ्जायमान होते हैं। निरन्तर स्वयं भयभीत रहते हैं, दूसरों को भय दिखाते रहते हैं, औरों को भयवान देख कर स्वयम् आनन्दित होते हैं। धर्माचार व शुभाचार से घृणा करके मायाचार से प्रीति रखते हैं, दूसरों के छिद्र ढूंढते हैं, काम भाव की तीव्र लालसा से आतुर रहते हैं, इस प्रकार चारित्र मोहनीय कर्म के भेद रूप इन कषायों का विचार कर जो उनसे बचते हैं वे ही मोह शत्रु की सेना के आक्रमण से अपनी रक्षा करते हैं। जो कषायों की पूर्ति में रञ्जायमान होते हैं वे सदैव स्वयं

संक्लेशित रहते हैं दूसरों को संक्लेशित किया करते हैं।

इस प्रकार अज्ञानी विषय लंपटी कषायी व्यक्तियों के आप्त पना नहीं हो सकता और न ही उनके बचन सत्यार्थ रूप हो सकते हैं। उनको अतीन्द्रिय सुख का श्रद्धान नहीं होता। विषय लंपटी तृष्णातुर हो कर भोग्य पदार्थों के संग्रह में तीव्र माया व लोभ से वर्तन करता है जिससे भोग्य पदार्थों के लाभ में या विनाश में वाधा होती जानता है उनसे क्रोध करता है। इष्ट विषयों के लाभ में अपने को बड़ा मान कर अभिमान करता है या बाधा पहुंचाये जाने पर शत्रुता बांध लेता है। बदला लेने का उपाय किया करता है। इस प्रकार कभी हर्ष, कभी विषाद कभी द्वेष भावों में उलझा रहता है। इष्ट विषयों के वियोग में महान शोकित या दुखित होता है। तीव्र रागद्वेष मोह से वह अज्ञानी तीव्र कर्म बांध कर मन २ में भटकता है कभी भी शान्ति को नहीं पाता है। ऐसे आप्त का कहा हुवा शास्त्र कैसे सत्य आगम हो सकता है, अरहंत भगवान सर्वज्ञ वीतराग हैं सर्वथा निर्दोष हैं, उनको किसी प्रकार की वाधा नहीं, कोई पीड़ा नहीं, किसी से राग नहीं किसी से द्वेष नहीं, उन के वचन अलीक कैसे हो सकते हैं, यदि संसार में किसी का कथन सत्य हो सकता है तो वह अरहंत का ही हो सकता है।

चार घातिया कर्मों के नाश होने पर प्रभु ने अरहन्त पद पाया, ज्ञानावरणी के चय से अनन्त ज्ञान, दर्शनावर्णी के चय से अनन्त दर्शन, अन्तराय के चय से अनन्त बल और मोहनीय के चय से अनन्त सुख प्राप्त किये, कोई कारण ऐसा शेष नहीं रहा कि जिससे प्रभु का कथन अन्यथा हो। अतएव अरहन्त देव ही सत्यार्थ आप्त हैं और उनका प्रतिपादित उपदेश ही यथार्थ आगम है। जो राग द्वेष मोह से रहित होते हैं उनका कथन कभी असत्य नहीं हो सकता असत्य वचन वही कहेगा जो किसी स्वार्थ के आधीन हो और अपना कोई प्रयोजन सिद्ध करना चाहता हो अल्पज्ञ मोही जीवों के कहे हुवे शास्त्र यथार्थ आत्म कल्याणकारी नहीं हो सकते। जिसके कुछ भी अज्ञान होगा उसका कथन ठीक नहीं हो सकता। जिसमें राग द्वेष मोह होगा वह समभाव से कथन नहीं कर सकता। इस लिये अज्ञान और विषय कषायों से दूर वर्ती सर्वज्ञ वीतरागी ही आप्त हो सकता है उनहीं का कहा हुवा आगम सत्य और निर्दोष हो सकता है।

पूर्वापर विरुद्धादेर्व्यपेतो दोषसंहतेः ।
द्योतकः सर्वभावानामाप्तव्याहृतिरागमः ॥ ५ ॥

अन्वयार्थ—(पूर्वापर विरुद्धादे) पूर्वापर विरुद्ध आदि (दोषसंहतेः) दोषों के समूह से (व्यपेता) रहित (सर्व भावानां)

सर्व पदार्थों के स्वभावों का (उद्योतकः) प्रकाश करनेवाला (आप्त व्याहृति) आप्त का कहा हुवा (आगमः) आगम होता है।

भावार्थ—सर्वज्ञ वीतराग भगवान का कहा हुआ आगम पूर्वापर विरोध आदि दूषणों से सर्वथा रहित होता है ऐसा नहीं जो पदार्थ का स्वरूप कहीं कुछ बता दिया और कहीं कुछ कह दिया। जिस आगम में पूर्वापर विरोध पाया जाता है वह सर्वज्ञ वीतराग का वचन नहीं हो सकता पूर्वापर विरोध तो वहीं पाया जावेगा जहां कि वक्ता अपने स्वार्थ के वशीभूत होकर अपने प्रयोजन की सिद्धि के निमित्त अर्थ का अनर्थ करदेता है, या अपनी मन्द बुद्धि और अल्पज्ञान के कारण वस्तु के यथार्थ स्वरूप को न समझकर कथन कर डालता है। हिंसा को पाप कहना और फिर यज्ञों में पशुओं के होमने रूप हिंसा में परम धर्म मानना यह सर्व पूर्वापर विरुद्ध कथन हैं। कहीं कहना जीव ही अपने कर्म के फल को आप भोगता है, फिर वहीं कहना कि ईश्वर दंड देता है कहीं कहना कि जीव अनेक हैं और फिर कहना कि उन सब की सत्ता एक है ब्रह्म एक है। कहीं कहना कि मुक्ति में ईश्वर भेजता है और फिर यह कहना कि मुक्ति अपने द्वारा ही प्राप्त होती है कहीं कहाजाता है कि ईश्वरकी इच्छा विना पत्ता भी नहीं

हिलता फिर वहीं यह कहना कि हर एक जीव अपने पाप पुण्य कर्म का ज़िम्मेवार है इत्यादि। अरहन्त भगवान का आगम वस्तु के स्वरूप का यथार्थ प्रतिपादन करता है, न कम न अधिक। जो ज्ञान वस्तु के स्वरूप को यथार्थ न जान कर न्यूनाधिक जानता है, वह मिथ्या ज्ञान है। आगम के द्वारा जो पदार्थों का ज्ञान होता है वह संशय, विपर्यय व अनध्यवसाय इन तीन दूषणों से रहित होता है और वही प्रमाण ज्ञान या सम्यक् ज्ञान कहलाता है। विरुद्ध दोतर्फा ज्ञान होने को 'संशय' कहते हैं, जैसे किसी पदार्थ को देख कर यह संदेह करना कि यह चांदी है या सीप है। इस प्रकार के निर्णय रहित डांवाडोल ज्ञान को संशय कहते हैं।

विपर्यय—अन्यथा रूप एकतर्फा ज्ञान को विपर्यय ज्ञान कहते हैं, जैसे चांदी को सीप मान लेना, जैसे रात्रि में अन्धेरे में एक दूर खड़े हुवे मनुष्य को मनुष्य न जान कर एक खंभा मान लेना यह विपरीत ज्ञान है।

अनध्यवसाय—यथार्थ स्वरूप जानने की इच्छा न होने को अनध्यवसाय कहते हैं जैसे पांव में तिनका चुभजाने पर केवल इतना ही जान पना होना कि 'कुछ है' और इस से अधिक कुछ विचार न करना। इस प्रकारका विचार रहित ज्ञान अनध्यवसाय ज्ञान कहलाता है। इन तीनों दोषों से

रहित वस्तु के ठीक२ निर्णय रूप ज्ञान होने को प्रमाण-ज्ञान कहते हैं। अरहन्त कथित आगम द्वारा ऐसा ही प्रमाण ज्ञान होता है। आगम तीन लोक सम्बन्धी पदार्थों को प्रकाशित करने वाला अद्वितीय नेत्र है। अरहन्त का आगम अनेकान्त मय है। एकान्त वाद का निषेध कर निर्णय करता है कि कथंचित् द्रव्य की अपेक्षा वस्तु नित्य भी है, और कथंचित् पर्याय की अपेक्षा वस्तु क्षणिक भी है। भगवन्त का आगम एकान्त का निषेध कर सर्वांग वस्तु का निर्णय करता है। नय विवक्षा से वस्तु में अस्ति नास्ति, एक, अनेक, भेद, अभेद, नित्य, अनित्य आदिक अनेक स्वभाव पाये जाते हैं जिन में परस्पर विरोध मालूम पड़ता है जैसे अस्ति नास्ति में प्रतिपक्षीपना पाया जाता है परन्तु जब इन्हीं स्वभावों को स्याद्वाद द्वारा बताया जाता है तो सब विरोध दूर हो जाता है, क्यों कि एक ही पदार्थ कथंचित् अपने द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा अस्ति रूप है, कथंचित् पर द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा नास्ति रूप है। समुदाय की अपेक्षा एक रूप है कथंचित् गुण पर्याय की अपेक्षा अनेक रूप है। कथंचित् संज्ञा संख्या लक्षण की अपेक्षा गुण पर्यायादि अनेक भेद रूप हैं कथंचित् सत् की अपेक्षा अभेद रूप है, कथंचित् द्रव्य की अपेक्षा नित्य, कथंचित् पर्याय की अपेक्षा अनित्य है।

इस प्रकार भगवंत का आगम स्याद्वाद द्वारा सर्व विरोध को दूर कर जगत के समस्त पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का प्रकाश करने वाला है। अरहन्त के आगम में जो लक्षण पदार्थों के स्वरूप की सिद्धि के लिये प्रतिपादित किये गये हैं वे सब ही अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असम्भव इन तीनों दोषों से रहित हैं। जो लक्षण कहा जाता है वह यदि किसी लक्ष्य में तो पाया जावे और किसी लक्ष्य में न पाया जावे तो वह लक्षण अव्याप्ति दूषण युक्त लक्षण कहलाता है जैसे चेतना आत्मा का लक्षण है, कोई आत्मा ऐसी नहीं जो चेतना रहित हो, इस लिये आत्मा का चेतना लक्षण अव्याप्ति दूषण से रहित है। यदि आत्मा का लक्षण रागादिक कहें तो अव्याप्ति दूषण आता है क्यों कि रागादिक संसारी जीवों के ही पाये जाते हैं सिद्ध जीवों के नहीं। जो लक्षण लक्ष्य में भी पाया जावे और अलक्ष्य में भी पाया जावे तो वह अतिव्याप्ति दूषण युक्त लक्षण कहलाता है। चेतना लक्षण जीव पदार्थ बिना अन्य किसी भी पदार्थ में नहीं पाया जाता है। यदि आत्मा का लक्षण अमूर्तिक कहा जावे तो अति व्याप्ति दूषण आता है क्यों कि जैसे आत्मा अमूर्तिक है वैसे ही धर्म, अधर्म, आकाश, काल, द्रव्य भी अमूर्तिक हैं। इस कारण आत्मा का चेतना लक्षण अति व्याप्ति दूषण से रहित है।

जो लक्षण प्रमाण द्वारा सिद्ध न हो सके उसे असम्भव कहते हैं जैसे आत्मा को जड़ कहना यह लक्षण आत्मा में प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाण से वाधित है। इस प्रकार अरहन्त का आगम समस्त दोषों से रहित है और जगत के समस्त पदार्थों का सत्यार्थ स्वरूप का प्रकाश करने वाला है। जगत जीवादि ६ द्रव्यों का समुदाय है, उन में से जीव और पुद्गल की अवस्थायें विशेष संसार में अनेक प्रकार की हो रही हैं, धर्मादि चार द्रव्य जीव पुद्गल के कार्यों में सहकारी होते हैं। आगम वही है जो इन छः द्रव्यों के गुण पर्यायों को ऐसा स्पष्ट झलका देवे कि आगम के ज्ञाता को कोई भी लौकिक अवस्था देख कर आश्चर्य उत्पन्न न हो, नये२ आविष्कारों के मर्म को भी वह समझ जावे, आगम केवलज्ञान के समान समस्त पदार्थों का दिखाने वाला होता है सो ठीक ही है क्योंकि केवली भगवान की दिव्य ध्वनि में जो पदार्थों का स्वरूप प्रगट होता है उसी का सार आगम में होता है। इसलिए जिनेन्द्र कथित आगम सब अज्ञान का नाश करने वाला व सब पदार्थों का प्रकाश करने वाला है।

ध्यानानल प्रतापेन दग्धे मोहेन्धने सति।
शेष दोषास्तता ध्वस्ता योगा निष्कल्मषायते ॥६॥

अन्व०—(ध्यानानल प्रतापेन) ध्यान रूपी अग्नि के

प्रताप से (मोहेन्धने) मोह रूपी ईन्धन के (दग्धे सति) जल जाने पर (शेष दोषाः) बाकी के अज्ञानादिक दोष (ध्वस्ताः) नष्ट हो जाते हैं (ततः) तब (योगी) साधु (निष्कल्मषायते) सर्व मैल से रहित हो जाता है।

**मोहकर्मरिपौ नष्टे सर्वे दोषैश्च विद्रुताः।**
**छिन्नमूलतरो यद्वद् ध्वस्तं सैन्यमराजवत् ॥७॥**

(मोह कर्म रिपौः) मोह कर्म रूपी शत्रु के (नष्टे) नाश होने पर (सर्वे दोषाः च) सब ही दोष (विद्रुतः) भाग जाते हैं। ( यद्वद् ) जिस तरह (छिन्न मूल तरोः) मूल के नष्ट हो जाने पर वृक्ष का नाश हो जाता है। (ऽराजवत् सैन्यम ध्वस्तम्) या जैसे राजा बिना सेना भाग जाती है।

भावार्थ—अनादि काल से जीव का महान शत्रु मोहनीय कर्म है, ये ही इस संसारी प्राणी को रागी द्वेषी मोही बना कर आत्म विरोधी मार्ग में पटक देता है मोह मदिरा से मतवाला हुवा जीव अपने निज स्वरूप में स्थिरता को नहीं पाता है। इसके साथी क्रोध, मान, माया, लोभ, चार कषाय हैं, इन्हीं के कारण यह प्राणी ज्ञानावरणादि आठों कर्मों का बन्ध करता है, और उस कर्म के उदय वश संसार बन में भटका करता है। मोहनीय कर्म के दो

भेद हैं दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय। दर्शन मोहनीय कर्म के उदय से जीव को मूर्च्छा रहा करती है, तथा चित्त ठिकाने नहीं रहता, भ्रम बुद्धि हो जाती है, सत्य को असत्य असत्य को सत्य मानता रहता है, जब इस दर्शन मोह का क्षय हो जाता है तब मूर्च्छा का भी नाश हो जाता है और यह जीव अनन्त काल से चले आये रोग से छूट कर नीरोगी हो जाता है, सम्यक् दर्शन गुण प्रकाशमान होजाता है। सम्यक् दर्शन के हो जाने पर अनन्तानुबंधी कषाय का उदय नहीं रहता है इस लिये न्याय, कर्तव्य का ध्यान होजाता है, यद्यपि अव्रती सम्यक् दृष्टि पंचाणु व्रत को नियम रूप से ग्रहण नहीं कर सकता क्योंकि देश संयम के घातक अप्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय मौजूद है। यह चौथे गुण स्थानवर्ती अविरति सम्यक् दृष्टि यद्यपि प्रतिज्ञा पूर्वक व्रती नहीं है तथापि प्रशम, संवेग अनुकम्पा, आस्तिक्य, भाव का धारी होता है जिस से परिणामों में शांति, धर्मानुराग, संसार शरीर भोगों से वैराग्य, प्राणिमात्र पर दया और मोक्ष आदि पदार्थों में श्रद्धा हो जाती है, मिथ्या दृष्टि की अपेक्षा उसकी प्रवृति अधिक विवेक पूर्ण और न्याय पूर्ण हो जाती है। अरहन्त भक्ति, गुरु सेवा, स्वाध्याय, स्वानुभव आदि भाव शुद्धि के कारण कार्यों में प्रवृति करते हुए जब अप्रत्याख्याना-

वरण कषाय का उपशम हो जाता है तो यह श्रावक के ग्यारह प्रतिमा रूप चारित्र को बढ़ाता चला जाता है। जब प्रत्याख्यानावरण कषाय का भी उपशम हो जाता है तब समस्त गृह परिगृह को त्याग साधु के निर्ग्रन्थ पद को धारण करलेता है, धर्म ध्यान के अभ्यास से तथा शुक्ल-ध्यान के प्रताप से गुण स्थान चढ़ता हुआ जब दसवें गुण स्थान के अंत में सर्व मोह का ध्यान रूपी अग्नि से क्षय कर डालता है बारहवें क्षीण मोह गुणस्थान में एकत्व वितर्क शुक्लध्यान में लीन हो जाता है, एक अन्तरमुहूर्त की ध्यान अग्नि से ही ज्ञानावरण, दर्शनावरण, तथा अन्तराय कर्म को नाश कर डालता है और एक दम से केवल ज्ञानसूर्य का प्रकाश होजाता है। सर्वज्ञ परमात्मा अर्हन्त, पूजनीक, क्षुधा तृषादि अठारह दोष रहित परम औदारिक शरीर में स्थित अरहंत परमात्मा हो जाता है।

इस प्रकार अरहन्त पद की प्राप्ति का मुख्य कारण ध्यान है। ध्यान के प्रताप से ही मोह रूपी ईंधन का नष्ट होता है। मोह के नष्ट होजाने पर बाकी तीन घातिया कर्मों का भी नाश हो जाता है, आत्मा जीवन मुक्त परमात्मा हो जाता है। वास्तव में सब कर्मों में प्रबल मोहनीय कर्म ही है, यह ही जीव का अनादि शत्रु है। जब ध्यान अग्नि द्वारा इस को नष्ट करादिया जाता है तो

बाक़ी सब दोष आत्मा को छोड़ भाग जाते हैं, जैसे हरे भरे वृक्ष की जड़ कट जाने पर वृक्ष सूख जाता है या युद्धस्थल में राजा के भाग जाने पर या उसके मारे जाने पर सेना युद्धस्थल को छोड़ कर भाग जाती है, उसी प्रकार आत्म ध्यान द्वारा मोहनीय कर्म के क्षय हो जाने पर अन्य सब कर्म क्षय हो जाते हैं। और आत्मा साक्षात परमात्मा स्वरूप अपने परम अविकार, निर्मल स्वभाव में स्थित हो जाता है।

**नष्टम् छद्मस्थविज्ञानं नष्टं केशादिवर्द्धनम् ।**
**नष्टं देहमलं कृत्स्नं नष्टे घातिचतुष्टये ॥८॥**

अन्व०—(घाति चतुष्टये) चारों घातिया कर्मों के (नष्टे) नाश हो जाने पर (छद्मस्थविज्ञानं) क्षयोपशम या अल्पज्ञान (नष्टं) नहीं रहता है (केशादि वर्द्धनम्) नख केश का बढ़ना (नष्टं) दूर हो जाता है (कृत्स्नं देहमलं) सम्पूर्ण शरीर के अन्दर का मैल (नष्टं) नाश होजाता है।

**नष्टं मर्यादविज्ञानं नष्टं मानसगोचरम् ॥**
**नष्टंकर्ममलं दुष्टं नष्टो वर्णात्मको ध्वनि ॥९॥**

अन्वयार्थ—(मर्यादविज्ञानं नष्टं) मर्यादा रूप ज्ञान नष्ट हो जाता है (मानसगोचरं नष्टं) मन संबन्धी विकल्प नष्ट हो जाते हैं (दुष्टं कर्ममलं नष्टं) दुखदाई

कर्म मलका बन्ध नष्ट होजाता है (वर्णात्मको ध्वनि नष्टः) अक्षरात्मक ध्वनि नहीं रहती।

भावार्थ—एक परम वीतरागी साधु क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ हो ध्यान बल से जब दशवें गुण स्थान के अन्त में मोहनीय कर्म क्षय कर डालता है, तो फिर एक अन्तर मुहूर्त क्षीण मोह नाम बारहवें गुण स्थान में विश्राम करके ज्ञानावरण दर्शनावरण और अन्तराय कर्मों को भी क्षय कर डालता है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण अन्तराय और मोहनीय चारों घातिया कर्म कहलाते हैं, यह आत्माके ज्ञान, दर्शन, वीर्य और सुख को आच्छादित करते हैं इसी कारण घातिया कहलाते हैं, इनके नष्ट हो जाने पर प्रभु तेरहवें गुण स्थान को प्राप्त होते हैं, अरहन्त परमेष्ठी कहलाते हैं, चारों घातिया कर्मों के क्षय होजाने से अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त ज्ञान तथा अनन्त बल को प्राप्त होते हैं। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्याय ज्ञान का जो क्षायोपशमिक ज्ञान हैं, अभाव होजाता है, और केवल ज्ञान जो उत्कृष्ट है जो कि भूत भविष्यत् वर्तमान काल सम्बन्धी लोकालोक के समस्त पदार्थों की समस्त गुण पर्यायों को एक साथ युगपत देखने जानने वाला है प्रकाशमान हो जाता है। परम शुक्ल ध्यान नामा तप के बल से प्रभु का शरीर

स्फटिक के समान निर्मल हो जाता है, यह परमौदारिक शरीर निर्मल परम सुगन्ध मय होता है, इसमें निगोदिया जीव राशि का सर्वथा अभाव होता है, कोई किसी प्रकार का भी मैल इस शरीर में नहीं रहता, मल का अभाव हो जाने से ही नख और केशों का बढ़ना भी दूर हो जाता है क्यों कि नख और केश तो शरीर से बाहर निकले मल की ही तो पर्याय हैं जब अन्तरङ्ग में मैल का सर्वथा अभाव होगया तो फिर नख और केश कैसे बढें। यह शरीर परम सुन्दर, परम कान्ति मय, परम शान्त और परम आश्चर्य-कारी होता है। प्रभु के यद्यपि इन्द्रिय और मन होते हैं परन्तु वे कुछ काम नहीं करते। मति, श्रुतज्ञान ही इनके द्वारा काम किया करते हैं, वे ज्ञान अब रहे नहीं, कोई संकल्प विकल्प रहा नहीं यह इन्द्रियें और मन केवल ज्ञान में किसी प्रकार बाधक नहीं। ध्यान रूपी अग्नि से प्रभु ने चिरकाल के लगे हुवे कर्म फल को अपनी आत्मा से जला डाला है और पवित्रता की परमसीमा को प्राप्त किया है। भव्य जीवों के पुण्य प्रसाद से भगवान की दिव्य ध्वनि खिरती है। यह दिव्य ध्वनि वस्तु के यथार्थ स्वरूप को कहने वाली होती है। यह ध्वनि मेघ की गरज के समान निरक्षरी होती है, परन्तु इसका स्वभाव ऐसा होता है कि अनेक भाव रूप परिणमन करजाती है, सभा

निवासी देव, मनुष्य पशु पक्षी सब ही जीव अपनी२ भाषा में सुनते हैं सब को ऐसा झलकता है मानों प्रभु का उपदेश उनकी ही भाषा में हो रहा है। यह वाणी इतनी गम्भीर होती है कि बारह सभा निवासियों को सब ही को स्पष्ट सुनाई देती है। यह वाणी परम शान्ति और सुख के देने-वाली होती है, मानो अमृत ही बर्षाती है अनेक भव्य जीव इस वाणी को सुन अपने हित का सच्चा मार्ग पा लेते हैं और अपना आत्म कल्याण कर स्वयं परमात्मा पद को प्राप्त होते हैं। केवल ज्ञान का विषय अनन्त है, इसलिये अरहन्त के मर्यादारूप ज्ञान जो छद्मस्थों के होता है नहीं रहा, यद्यपि मन होता है तथापि मन संबन्धी तर्क वितर्क संकल्प विकल्प नहीं होते क्यों कि न तो उनके श्रुतज्ञान है और न उनका उपयोग चञ्चल है, वे निरंतर आत्मस्थ रहते हैं।

नष्टाः क्षुत्तृड्भयस्वेदा नष्टं प्रत्येकबोधनम् ।
नष्टं भूमिगतस्पर्शं नष्टं चेन्द्रियजं सुखम ॥१०॥
नष्टा सदेहजा छाया नष्टा चेन्द्रियजा प्रभा ।
नष्टा सूर्यप्रभा तत्र सूतेऽनन्तचतुष्टये ॥१०॥

अन्व०—(तत्र) उस अरहन्त में (अनन्त चतुष्टये) अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनंत सुख और अनंत बल

इन चारों के (सूते) प्रकाश हो जाने से (क्षुत्तृड्भय स्वेदः) भूख प्यास भय पसीना (नष्टाः) नहीं रहते हैं (प्रत्येक बोधनम् नष्टम्) हर एक जुदा को समझाने की क्रिया बंद हो जाती है। (भूमिगत स्पर्शं) भूमि का स्पर्श (नष्टं) नहीं रहता (चइन्द्रियजं सुखम्) और इन्द्रिय सम्बन्धी सुख (नष्टं) का अभाव हो गया है, (सदेहजा छाया) अपने शरीर की छाया (नष्टः) नहीं पड़ती (चइन्द्रियजा प्रभा) इन्द्रि जनित चंचलता (नष्टः) नहीं रही (सूर्य प्रभा) सूरज की दीप्तिः (नष्टः) प्रभु के शरीर के सामने फीकी पड़गई।

भावार्थ—अरहन्त भगवान को चारों घातिया कर्मों का नाश कर देने पर अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य रूप, अनन्त चतुष्टय की प्राप्ति होती है। भूख प्यास की व्याधा प्रभु के होती नहीं, इच्छा मोहनीय कर्म के उदय से होती है, मोहनीय के नष्ट हो जाने से प्रभु के इच्छा हो नहीं सकती, अन्तराय के नष्ट हो जाने से अनन्त बल प्रगट हुवा, अनन्त बल के कारण ऐसा भाव हो नहीं सकता कि यदि हम भोजन न करेंगे या जल नहीं पियेंगे तो निर्बल रहेंगे। अनन्त बली के ऐसा कायरता का अर्थात् दीनता का भाव संभव नहीं, अनन्त सुख होने पर भूख प्यास की व्याधा भी प्रभु के हो नहीं सकती, प्रभु के अनन्त बली होने के कारण भय

नहीं होता, भगवान सिंहासन पर से चार अंगुल ऊपर अधर बैठते हैं, भूमि का स्पर्शन नहीं होता। कारण यह है कि परमौदारिक शरीर बहुत हलका होजाता है प्रभु का उपदेश उनकी निरक्षरी दिव्य ध्वनि में होता है उसे सुनकर प्रत्येक जीव जो उसको सुनता है उसे समझ लेता है, उसकी सब संशय दूर हो जाती है प्रभु जुदा २ किसी से वार्तालाप नहीं करते, नहीं जुदा जुदा किसी का प्रश्न सुन कर उनका जुदा २ उत्तर देते हैं न उनके ऐसा करने की इच्छा होती है और न उनके इन्द्रिय और मन का व्यापार होता है। भगवत् की वाणी उनकी इच्छा बिना भव्य जीवों के पुण्य प्रसाद से ही खिरती है। प्रभु के यथा ख्यात चारित्र होने से इन्द्रिय विषय रहीं रहे, मोहनीय कर्म का अभाव हो जाने से उनके प्रति इच्छा नहीं रही, अनन्त सुख होने से इन्द्रिय जनित सुखाभास का भी सर्वथा अभाव हो गया। प्रभु का शरीर परमौदा-रिक सप्त धातु उपधातु रहित होता है, शुद्ध स्फटिक के समान निर्मल होता है, उस में पसेव नहीं होता, सर्वथा शुद्ध होने के कारण उसकी छाया नहीं पड़ती, योगों की चपलता नष्ट हो जाती है, सब संकल्प विकल्प रहित होते हैं। प्रभु के शरीर की आभा अद्भुत होती है, सूर्य का प्रकाश और तेज भी उस के सामने फीका पड़

जाता है ।

तदा स्फटिकसंकाशं तेजोमूर्तिमयां वपुः ।
जायते क्षीणदोषस्य सप्त धातु विवर्जितम् ।१२।

अन्वयार्थ— (तदा) तब (क्षीणदोषस्य) दोष रहित अर्हन्त भगवान का (वपुः) शरीर (सप्तधातु विवर्जितम्) सात धातु रहित (स्फटिकसंकाशं) स्फटिक मणिके समान प्रकाशमान (तेजोमूर्तिमयं) तेजकी मूर्ति स्वरूप (जायते) होजाता है ।

सकलग्राहकं ज्ञानं युगपद्दर्शनं तदा ।
अव्या बाधसुखं वीर्यं एतदाप्तस्य लक्षणं ।१३।

अन्वयार्थ— (तदा) तब उस अर्हन्त अवस्था में (युगपत) एक साथ होने वाले (सकलग्राहकं ज्ञानं दर्शनं) संपूर्ण पदार्थों के सामान्य और विशेष स्वरूप को ग्रहण करने वाले अनन्त ज्ञान और अनन्त दर्शन हो जाते हैं (अव्याबाध सुखं) वाधा रहित अनन्त सुख (वीर्य) और अनन्त वीर्य प्रगट होजाते हैं (एतद) इत्यादि ऊपर कहे प्रमाण (आप्तस्य लक्षणं) अरहन्त आप्त का लक्षण जानना चाहिये ।

भावार्थ— प्रभु का शरीर परम औदारिक होजाता है कोई किसी प्रकार का मल उस में नहीं रहता । न उस में

रक्त, अस्थि, मज्जा, आदि सप्त धातुऐं रहती हैं प्रभु के कवलाहार नहीं रहता, समय २ में आने वाली आहारक वर्गणाओं के द्वारा ही परम औदारिक शरीर की स्थिति बनी रहती है जैसे वृक्षों की स्थिति लेप आहार से होती है प्रभु के क्षुधा तृषा आदि दोष का सर्वथा अभाव होजाता है। प्रभु के शरीर की प्रभा सूर्य से कहीं बढ़ कर है। सूर्य की क्या उपमा दें, सूर्य भी प्रभु के सामने कुछ चीज़ नहीं सूर्य जब उदय होता है तब अन्धकार मिटता है, जब सूर्य अस्त होता है तो फिर अन्धेरा फैल जाता है। प्रभु के शरीर का तेज अक्षीण है, जो सदैव प्रकाशमान रहता है प्रभु के अन्तरङ्ग में केवल ज्ञान रूपी सूर्य प्रकाशमान है। अन्तरंग, बहिरंग समस्त तम के नाश करने वाले अद्भुत सूर्य के सामने जगत का सूर्य क्या मूल्य रखता है। दर्शनावरणीय, ज्ञानावरणीय के क्षय से प्रभु के अनन्त दर्शन, अनंत ज्ञान प्रकाशमान हुवे, जगत के समस्त ही पदार्थों को एक साथ देखने और जानने की शक्ति प्रगट हुई। प्रभु के केवल ज्ञान में जगत के सब पदार्थ सदैव झलकते हैं प्रभु का केवल ज्ञान सर्व ज्ञेयों को त्रिकाल वर्ती पर्यायों सहित एक साथ जानता है। उस में इतनी सामर्थ्य है कि यदि ऐसे अनन्त जगत भी हों तो भी उन सब का युगपत् ज्ञान होवे केवल दर्शन और केवल ज्ञान दोनों साथ२ होते

हैं, आगे पीछे नहीं, दोनों एक साथ ही कार्य करते हैं। चारों घातिया कर्म का नाश होजाने से प्रभु के अनन्त सुख प्रकाशमान हुआ। वह सुख शाश्वत है, अविनाशी है स्वाधीन है।

अन्तराय कर्म का नाश हो जाने से स्वामी की आत्मा में अनन्त बल का प्रकाश हुआ, अनन्त वीर्य का प्रकाश हुआ, शुक्ल ध्यान रूपी तप के प्रताप से प्रभु के शरीर में अनेक ऋद्धि सिद्धिऐं प्राप्त हुईं। अनन्त बल के प्रगट होने से काम पिशाच, क्रोधादि सुभट शत्रुओं को जीत परम विजय प्राप्त की। प्रभु ने क्रोध को, मान को, माया को, लोभ को, मोह को, मद को, ईर्षा आदि कुभावों को जीत कर परम शान्त निजाधीन अरहन्त पद को प्राप्त किया इसी कारण "जिन" कहलाए इत्यादि ऊपर कहे हुए गुण जिस व्यक्ति में भी पाए जाते हैं वही सच्चा आप्त है।

**त्रैलोक्यक्षोभका ह्येते जन्ममृत्युजरादयः।**
**ध्वस्ता ध्यानाग्निना येन स आप्तः परिपठ्यते।१४॥**

अन्वयार्थ— (एते) ये (जन्ममृत्युजरादयः) जन्म मरण जरादिक दोष (त्रैलोक्यक्षोभकाहि) तीन लोक के प्राणियों को निश्चय से कष्ट देने वाले हैं (येन) जिसने (ध्याना-ग्निना) ध्यान की अग्नि से (ध्वस्ता) इन को नाश करदिया

है (स आप्तः) वही आप्त (परिपठ्यते) कहा जाता है।

**क्षुधा तृषा भयं द्वेषो रागो मोहश्च चिन्तनम्।**
**जरा रुजाच मृत्युश्च स्वेदो खेदो मदो रतिः॥१५॥**
**विस्मयो जननं निद्रा विषादोऽष्टादश ध्रुवाः।**
**त्रिजगत्सर्वभूतानां दोषाः साधारणा इमे॥१६॥**

अन्वयार्थ—(क्षुधा) भूख (तृषा) प्यास (भयं) डर (द्वेषः) द्वेष (रागः) राग (च मोह) और मोह (चिन्तनं) चिन्ता (जरा) बुढ़ापा (च रुजा) और रोग (चमृत्यु) और मरण (स्वेदः) पसीना (खेदः) खेद (मदः) अभिमान (रतिः) प्रीति (विस्मयः) आश्चर्य (जननम्) जन्म (निद्रा) नींद (विषादः) शोक (इमे) ये (अष्टादश दोषाः) अठारह दोष (त्रिजगत-सर्व भूतानां) तीन जगत के सर्व प्राणियों के भीतर साधारणा ध्रुवाः) साधारण रूप से सदा पाये जाते हैं।

**एतैर्दोषै विनिर्मुक्तः सोऽयमाप्तो निरञ्जनः।**
**विद्यन्ते येषु ते नित्यं तेऽत्र संसारिणः स्मृताः॥**

अन्वयार्थ—(एतै) इन (दोषैः) दोषों से (विनिर्मुक्तः) छूटा हुवा (सः निरञ्जनः) वही अञ्जन अर्थात मल रहित (अयम् आप्तः) यह आप्त होता है (येषु) जिनमें (ते) ये दोष (नित्यं) सदैव (विद्यन्ते) मौजूद रहते हैं (ते संसारिणः) वे

संसारी जीव (अत्र) इस लोक में (स्मृताः) कहे गये हैं।

भावार्थ—तीन लोक में जितने भी संसारी जीव हैं सब ही अनादि काल से क्रोधादि कषाय तथा अज्ञान के वशीभूत हो जन्म, मरण, जरा आदि के अनेक दुःखों को भोग रहे हैं। अरहन्त परमात्मा के यह भूख, प्यास, जन्म मरण, जरा, आदि दोष नहीं होते हैं। यह दोष अठारह हैं जो प्रभु में नहीं पाये जाते, इन अठारह दोषों के नाम यह हैं। क्षुधा, तृषा, भय, द्वेष, राग, मोह, चिंता, बुढ़ापा रोग, मरण, पसीना, खेद, अभिमान, रति, आश्चर्य, जन्म, नींद, शोक। साधारणतया यह दोष समस्त ही संसारी जीवों में पाये जाते हैं परन्तु अरहन्त परमेष्ठी ने ध्यान रूपी अग्नि द्वारा इन सब का विध्वंस करदिया है, वे इनसे सर्वथा रहित हैं।

असाता वेदनीय कर्म के तीव्र तथा मन्द उदय से क्षुधा कहिये भूख और तृषा कहिये प्यास की बाधा संसारी जीवों के होती है, मोहनीय कर्म के उदय से उन भूख प्यास के कष्ट को दूर करने के लिये खान पान की सामग्री जुटाने की इच्छा हुवा करती है, यथेच्छा पदार्थों के न मिलने से कष्ट होता है वीर्यान्तराय कर्म का उदय होने के कारण भूख प्यास सहन करने की शक्ति प्रकाशमान नहीं होती इस लिये संसारी जीवों के क्षुधा तृषा जनित

पीड़ा होती रहती है। अरहन्त भगवान ने मोहनीय का क्षय करडाला, अन्तराय को नष्ट करदिया, प्रभु के परम साता का उदय होता है इत्यादि कारणों का अभाव होजाने से अरहन्त भगवान को भूख प्यास की बाधा नहीं होती, वीतरागी होने के कारण अतीन्द्रिय अनन्त सुख का आस्वादन किया करते हैं तथा आत्मिक रस का पान किया करते हैं, अनन्त वीर्यवान होने से कर्म की निर्बलता उनके होती नहीं, योग बल से उनका शरीर समय२ पर स्वयं ग्रहण होनेवाली आहारक वर्गणाओं द्वारा सदा पुष्ट रहता है।

दर्शन मोहनीय तथा चारित्र मोहनीय कर्म को क्षय कर डालने से प्रभु के कोई भी किसी प्रकार का भय नहीं रहता, भय सात प्रकार का होता है इस लोक भय परलोक भय, अरक्षा, अगुप्ति, मरण, वेदना, आकस्मिक, प्रभु के अन्तरंग, वहिरंग, भेद रूप समस्त परिग्रह का अभाव होगया इस लिये किसी प्रकार की मूर्च्छा नहीं रही इच्छा रहित तथा मूर्च्छा रहित होने के कारण प्रभु के कोई भय नहीं रहा, स्वामी परम निर्भय हो गये।

क्रोध कषाय का अभाव होजाने से प्रभु की आत्मा में परम क्षमा गुण प्रकाशमान होगया, इस लिये स्वामी के द्वेष भाव का कोई कारण ही नहीं रहा, क्रोध का अभाव

अनिवृत्ति करण नवमें गुण स्थान में ही कर डाला था।

मोहनीय कर्म का क्षय होने से प्रभु के किसी प्रकार का भी राग नहीं रहा। राग दो प्रकार का होता है एक प्रशस्त अर्थात शुभराग, दूसरा अप्रशस्त अर्थात अशुभराग दान, शील, पूजा, परोपकार आदि शुभ कर्मों में उपयोग का लगाना प्रशस्त राग है विकथाओं में रंजायमान होना विषय कषाय रूप परिणामों का होना अप्रशस्त राग है यह शुभ और अशुभ दोनों प्रकार का राग ही प्रभु को नहीं रहा। चार प्रकार संघ अर्थात ऋषि, यति, मुनि, अनगार इनके प्रति वात्सल्य भाव का होना मोह है। परम वीतरागी के पर संघ कृत मोह का होना सम्भव नहीं, प्रभु के अनन्त सुख प्रगट हो गया है, इस लिये चिंता काहे की, शुभ विचार करना प्रशस्त चिंता है, यह धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान रूप है, अशुभ विचार करना अशुभ चिंता है यह आर्त ध्यान और रौद्र ध्यान रूप है प्रभु के स्वरूप में निश्चलता होने के कारण चिंता को प्रवेश नहीं। उपचार मात्र से शुक्ल ध्यान कहा जाता है यदि चिंता हो तो फिर अनन्त सुख कहां, इस लिये स्वामी के चिंता नहीं। स्वामी अनन्त बल के धारी हैं, अनन्त सुख के भोक्ता हैं, परम औदारिक शरीर उनके है, ऐसी दशा में उनके जरा कहां से हो सकती है, स्वामी के अनन्त

सुख होने के कारण रोग का सर्वथा अभाव है, परमौदारिक शरीर में रोग का प्रवेश कहां, रोग तो विकृत परिणामों से तथा शरीर में मल आदि का विकार होने से होता है परमौदारिक शरीर में मल होता ही नहीं वह तो स्फटिक के समान अत्यन्त स्वच्छ निर्मल और उज्वल होता है। संसारी जीवों में प्राणों के वियोग होने को मरण कहते हैं, एक पर्याय से दूसरी पर्याय में जाने का नाम जन्म है, पहली पर्याय के छूटने का नाम मरण है, कार्माण शरीर तो संसारी जीवों का प्रत्येक पर्याय में साथ ही रहता है। अरहन्त भगवान के परमौदारिक शरीर का छूटना कार्माण शरीर के साथ२ होता है, उनके संसारी जीवों की तरह मरण नहीं होता, प्रभु के आयु का अन्त होजाने पर फिर किसी अन्य पर्याय का ग्रहण नहीं होता, वह जन्म मरण से सदैव के लिये छूट जाते हैं। इसी कारण प्रभु के मरण को मरण नहीं कहते न ही उन के संसारी जीवों की तरह मरण सम्बन्धी कोई वेदना ही होती है। परमौदारिक शरीर होने से प्रभु के पसीना भी नहीं आता, पसीना एक प्रकार का मल है जो शरीर के रोमों द्वारा शरीर से बाहर निकलता है, जब शरीर निर्मल तथा स्वच्छ है तो फिर उस में पसीना क्योंकर आवे। स्वामी के इच्छाओं का अभाव हो गया, मूर्च्छा जाती रही फिर उन को खेद

कैसा । वह तो निजात्म स्वभाव में स्थित हैं, परपदार्थों से उनका कोई संबन्ध ही नहीं रहा, इस लिये उनके खेद भी नहीं । मानकषाय का सर्वथा अभाव होजाने के कारण प्रभु के मान अर्थात अहंकार नहीं रहा, उनकी आत्मा में तो मान के अभाव से मार्दव गुण प्रकाशमान हो रहा है मान को वहां ठिकाना कहां । प्रभु परम वीतरागी हैं, उन को किसी से राग नहीं किसी से द्वेष नहीं वह तो अपने निज आत्म में ही रत हैं, परपदार्थों में उन की रति नहीं । दर्शनावरणीय तथा ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय होजाने से प्रभु जगत के समस्त ही जड़ चेतन पदार्थों को उनके समस्त गुण पर्याय सहित युगपत् देखते जानते हैं । मोहनीय कर्म का भी अभाव है इसलिये विस्मय काहे का, विस्मय तो जब होता है कि किसी पदार्थ को पहले देखा या जाना न हो, प्रभु के दर्शन ज्ञान के सामने कोई वस्तु अपूर्व नहीं इस लिये स्वामी के विस्मय या आश्चर्य नहीं प्रभु संसारी पर्यायों से सर्वथा रहित होगये, चतुर्गति रूप संसार भ्रमण से स्वामी मुक्त हो गये, संसार भ्रमण के कारणों का सर्वथा अभाव होजाने से जन्म धारण नहीं रहा, दर्शनावरणीय कर्म का अभाव होजाने से निद्रा का दोष भी प्रभु में नहीं रहा प्रभु तो अब निजात्मस्वरूपा-वलोकन में जागृत हैं, एक समय मात्र भी उनके अचेतनता

नहीं। चेतन, अचेतन इष्ट पदार्थों का वियोग होजाने पर रंज करने का नाम शोक है, स्वामी के ममत्व नहीं, मूर्च्छा नहीं, परम समता को प्राप्त हुवे हैं मोह की डोर कट चुकी है निज आनन्द स्वभाव में मग्न उन के शोक कैसे हो सकता है, स्वामी के कोई शोक जनित आकुलता सम्भव नहीं। इत्यादि ये अठारह महा दोष हैं जिनके कारण सब ही संसारी जीव व्याकुल हो रहे हैं। इन महा दोषों से सर्वथा रहित श्रीवीतराग सर्वज्ञ देव ही हैं, इस लिये वे ही सच्चे आप्त देव पूजनीय और माननीय हैं, वास्तव में जो निर्दोष होता है और सर्वज्ञ होता है वही पूज्य हो सकता है। अरहन्त परमेष्टी में रागादि कोई दोष नहीं रहे, और वे त्रिकालज्ञ हैं, इस लिये वे ही सच्चे आप्त हैं। जगत के लोगों ने अनेक देव मान रक्खे हैं वे इन दोषों से रहित नहीं, उनको भूख, प्यास की बाधा होती है, उनके वस्त्राभूषण की इच्छा होती है अपनी रक्षा के निमित्त शस्त्र अस्त्र रखते हैं, कोई२ स्त्री भी रखते हैं, संसारासक्त होते हैं उन में आप्त पना या पूज्यनीय पद नहीं हो सकता वे दूसरों को संसार भ्रमण से कैसे छुड़ा सकते हैं।

**संसारो मोहनीयस्तु प्रोच्यतेऽत्र मनीषिभिः।**
**संसारिभ्यः परो ह्यात्मा परमात्मेति भाषितः॥१८॥**

अन्वयार्थ—(मोहनीयः) मोह सम्बन्धी विस्तार (तु) वास्तव में (संसारः) संसार है (मनीषिभिः) बुद्धिमानों ने (ऽत्र) इस श्लोक में (उच्यते) कहा है। (संसारिभ्यः परः) संसारी आत्माओं से दूरवर्त्ती (आत्मा) आत्मा (हि) निश्चय से (परमात्मः) परमात्मा (इति भाषितः) ऐसा कहा गया है।

भावार्थ—मोह जीव का एक बड़ा भयङ्कर शत्रु है संसारी जीव अनादि काल से मोह रूपी तेज़ मदिरा को पीकर मस्ताना हो रहा है और अपने निज स्वरूप को भुला कर व्यर्थ ही संसार में भ्रमण कर रहा है। मोह के उदय से सत्यार्थ धर्म को न जान चारों गतियों में घूम रहा है। कर्म रूप दृढ़ बन्धनों के पराधीन हुवा नाना योनियों में निरन्तर घोर दुख भोग रहा है, वारम्वार जन्म मरण कर रहा है। जो जो कर्म उदय में आकर रस देरहे हैं उनके उदय जनित अवस्थाओं में आपा मान, अज्ञानी जीव अपने स्वरूप से भ्रष्ट हो नवीन २ कर्म का बन्ध करता रहता है और कर्म बन्ध के आधीन हुवे प्राणियों के ऐसा कोई दुःख बाक़ी नहीं जो इन्हों ने न भोगा हो, समस्त दुखों को अनन्तानन्त बार भोगते २ अनन्तानन्त काल व्यतीत होगया। ऐसा कोई पुद्गल संसार में नहीं रहा जिसको जीव ने शरीररूप या आहार रूप में ग्रहण नहीं किया हो।

लोक में किसी क्षेत्र का एक प्रदेश भी नहीं जहां संसारी जीव ने अनन्त वार जन्म मरण न किया हो उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल का ऐसा कोई एक समय भी बाकी नहीं रहा जिस समय में यह जीव अनन्त बार नहीं जन्मा और नहीं मरा सम्यक् दर्शन ज्ञान चारित्र योग्य भावों को छोड़ अन्य समस्त भावों को जीव ने अनन्त वार संसार में धारण किया है। अनुदिश अनुत्तर विमानों को छोड़ नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव इन चारों पर्यायों में ये संसारी जीव जघन्य आयु से लेकर उत्कृष्ट आयु पर्यन्त समस्त आयुके प्रमाण को धारण कर अनन्त वार जन्म धारण किया है जिनेंद्र प्रभु के वचन के अवलम्बन बिना जीवों की मिथ्या ज्ञान के प्रभाव से विपरीत बुद्धि अनादि काल से होरही है सम्यक् मार्ग को ग्रहण न करने के कारण संसार वन में नष्ट भ्रष्ट हुवा निगोद को जा प्राप्त होता है, जहां से कि अनन्तानन्त काल में भी निकलना कठिन है। निगोद में यह जीव एक श्वांस मात्र में अठारह वार जन्म मरण करता अनेक दुःखों को सहन करता है। बड़ी कठिनाई से वहां से निकल कर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और प्रत्येक वनस्पति ऐसे पांच प्रकार के एकेन्द्रिय स्थावर जीवों की पर्यायों को धारण करता है। बड़ी कठिनता से वहां से निकल कर त्रस जीव होता है, जैसे चिन्तामणि

रत्न का मिलना बड़ा कठिन है, इसी प्रकार त्रस जीव का शरीर पाना भी कठिन है, इस जीव ने अनेक बार लट, कोड़ी, भौंरा, आदि शरीरों को बार२ धारण किया और घोर दुःखों को सहन किया। कभी यह विकल त्रय से निकल पंचेन्द्रिय भी हुवा तो मन विना बिलकुल अज्ञानी पंचेन्द्रिय पशु हुवा। कभी मन सहित दुष्ट सिंह आदिक पंचेन्द्रिय पशु हुवा तब इसने बहुत से निर्बल पशुओं को मार कर भक्षण किया, कभी यह आप निर्बल हो कर अपने से अधिक बलवान पशुओं द्वारा हता गया। पशु पर्याय में छेदन, भेदन, ताडन, तापन, भूख, प्यास, अति भार बहन, ठंड, गर्मी, बध बन्धन आदि के अनेक दुःख जो जिह्वा से वर्णन नहीं किये जा सकते इस जीव ने सहन किये। जब यह जीव अति रौद्र ध्यान से मरा तो भयानक नरकों में जाकर जन्म लिया नरक की भूमि मात्र के छूने से इतना दुख होता है जितना हजार बिच्छुओं के काटने से भी नहीं होता, शरीर को जला देने वाली लोहू और कीड़ों से भरी नदी वहां बहती है, तलवार की धार समान तेज़ पत्ते वाले सेमर वृक्ष वहां होते हैं, जो तलवार के समान शरीर को चीर डालते हैं वहां ठंड और गर्मी इतनी है कि मेरु पर्वत समान लोहे का गोला भी गल जाता है। असुर कुमार जाति के देव जो केवल तीसरे

नरक तक जाकर नारकियों को आपस में लड़ाते हैं और आप उनका दुःख देख रंजायमान होते हैं, वहां पर नारकी एक दूसरे के शरीर के टुकड़े २ कर डालते हैं। वहां पर प्यास इतनी होती है कि समुद्र भर पानी पीने पर भी प्यास नहीं बुझती और वहां पर एक बूंद भर जल भी पीने को नहीं मिलता, भूख इतनी लगती है कि तीन लोक का सारा अनाज खालिया जावे तब भी न मिटे, परन्तु एक दाना भी वहां खाने को प्राप्त नहीं होता, ऐसे२ घोर दारुण दुख यह जीव सागरों पर्यन्त नरकों में सहन करता रहता है। यदि किसी समय शुभ कर्मोदय से यह जीव मनुष्य गति में जन्म लेलेता है तो वहांके दुख तो प्रत्यक्ष ही हैं माता के गर्भ में नव मास दुख भोगता है बाल अवस्था में ज्ञान नहीं होता, युवावस्था में काम भोग में रत रहता है अनेक प्रकार के अन्याय अनीति करता है, बुढ़ापे में शिथिलता तथा अनेक रोगों से पीडित रहता है, इष्ट वियोग अनिष्ट संयोग जनित अनेक दुख भोगताहै और संकट सहन करता है कभी देव होता है यदि भवन वासी व्यन्तर और ज्योतिषी देवों में उत्पन्न हुआ तो वहां पांचों इन्द्रियों के विषय चाह रूपी अग्नि में जलता रहा, और जब मृत्यु सूचक माला मुरझाई तो रोर कर दुख सहन किये, यदि कल्पवासी भी हो गया तो वहां भी सम्यक् दर्शन विना

अनेक क्लेश सहन किये। ऐसी दशा में यह जीव अज्ञान और कषाय के वशीभूत हो चतुर्गति रूप संसार में भ्रमण करता रहता है। और सदैव जन्म, मरण, भूख, प्यास, रोग, वियोग, संयोग, संताप भोगता अरहट की घड़ी की तरह नवीन२ शरीरों को धारण करता अनन्तानन्त काल से फिर रहा है। इसी का नाम संसार है, जैसे एक गर्म उबलते हुवे कढ़ाहे में या देग में चावल चारों ओर नीचे ऊपर खोलता हुवा सीजे हैं, वैसे ही संसारी जीव कर्मों से तप्तायमान हुवा परिभ्रमण करता है, जैसे किसी शिकारी से भयभीत हुवा एक सूसा (खरगोश) एक अजगर के फटे हुवे मुख को बिल जान उस में प्रवेश करता है तैसे ही एक अज्ञानी जीव भूख, प्यास, काम, क्रोधादिक तथा इन्द्रिय विषयों की तृष्णा के आताप से संतापित हुवा विषयादि रूप अजगर के मुख में प्रवेश करता है। विषय कषायों में प्रवेश करना ही संसाररूप अजगर का मुख है, उस में प्रवेश करके यह संसारी जीव रूपी खरगोश अपने ज्ञान, दर्शन, सुख सत्तादिक भाव प्राणों को नाश कर निगोद में अचेतन जड़ सारिखा हुवा अनन्त वार जन्म मरण करता अनन्तानन्त काल व्यतीत करे है, वहां आत्मा का अभाव सा ही है, निगोद में अक्षर के अनन्तवें भाग ज्ञान है। अन्य गतियों में भी

जितने प्रकार के जो २ दुख हैं सो संसारी मोही जीव ने अनन्त बार भोगे हैं ऐसी कोई जाति दुख की रही नहीं जो इस जीव ने संसार में नहीं पाई। इस संसार में यह जीव अनन्त पर्याय दुःख मई पाता है, यदि कभी इन्द्रिय जनित सुख की कोई पर्याय पाता भी है तो वह भी स्थायी नहीं, वह भी विषयों के आताप सहित भय शंका संयुक्त अल्प काल के लिये पाता है, फिर अनन्त पर्याय दुख की भोग फिर कभी कोई एक पर्याय इन्द्रिय जनित सुख की कहीं प्राप्त होती है। इस प्रकार सुख तो राई समान है और दुख मेरु के तुल्य है। जैसे वन में एक अन्धा मनुष्य भ्रमण करता फिरा करता है तैसे ही मोह में अन्धा जीव चतुर्गति में परिभ्रमण किया करता है। संसारी जीव रोग दारिद्र वियोगादि के दुखों में पीड़ित हुवा धन उपार्जन कर दुख दूर करने के निमित्त मोहान्ध हुवा अनेक विपरीत इलाज किया करता है। सुखी होने के लिये अभक्ष्य भक्षण करता है, छल कपट करता है हिंसा करता है, धन के वास्ते चोरी करता है, मार्ग लूटता है परन्तु धन भी पुण्य हीन के हाथ नहीं आता, सुख तो पांच पापों के त्याग से होता है। मोही मिथ्यात्वी जीव पांचों पापों में प्रवृति करके अपने धन की वृद्धि, कुटम्ब की वृद्धि, सुख की वृद्धि चाहता है, इन्द्रिय विषयों की

प्राप्ति में सुख समझता है, येही मोह कृत अन्धपना है। संसारी जीवों के जो दुख प्रत्यक्ष देखने में आता है इस सब को कारण हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह आदि पांच पापरूप आचरण और क्रोध, मान, माया, लोभ कषाय और अन्याय ही है। दुःख होनेका और कोई मार्ग नहीं है। ऐसा आंखों देखते हुवे भी संसारी मोही जीव पाप करके हर्ष मानते हैं,ये विपरीत मार्ग ही अनन्त दुःखों का कारणभूत संसार है, यह सब मोह का ही विस्तार है। मोह है सो संसार है और संसार है सो मोह है। मोह का ऐसा विचित्र भयानक दुखदायी स्वरूप जान, संसार से विरक्त होय, अपने आत्म स्वरूप को जिन महात्माओं ने प्राप्त किया है और मोहनीय कर्म का सर्वथा अभाव कर शेष तीनों घातिया कर्मों को भी क्षय कर डाला है वेही वीतराग सर्वज्ञ अरहन्त परमेष्टी जीवन्मुक्त परमात्मा हैं। एक तपस्वी मुनि घोर तपश्चरण करता रहे व्यवहार मोक्षमार्ग का साधन करता रहे शास्त्रों का पठन पाठन करता रहे, परन्तु यदि उस के अंतरंग में एक छोटा सा भी अंकुर मोह का फूट आता है तो वह मोक्ष को प्राप्त नहीं करता, मोक्ष उस से दूर रहता है। संसारी लोग आशा से, भयसे तथा अज्ञान से लोभी, दम्भी, कामी व्यक्तियों को देव मान उनकी पूजा उपासना करते हैं वे

सच्चे आप्त नहीं हैं, जो विषयासक्त हैं, जो मोही हैं उनके परमात्मापना कैसे सम्भव हो सकता है वे तो संसार में आसक्त हैं वीतराग सर्वज्ञ देव ही सत्यार्थ जीवन मुक्त परमात्मा हैं। स्वर्गीय कविवर पं० भूधरदास जी ने श्री पार्श्व पुराण में वज्रनाभि चक्रवर्ति द्वारा भाई हुई वैराग्य भावना में संसार और मोह का जो स्वरूप दर्शाया है वह इस प्रकार है ॥ जोगी रासा छन्द ॥

"या संसार महा बन भीतर भरमत ओर न आवे।
जम्मन मरण जरा दोऊ दाहैं जीव महा दुख पावे ॥
कबहुक जाय नरक थिति भुंजै छेदन भेदन भारी।
कबहुक पशु पर्याय धरै तहां बध बन्धन भय भारी ॥
सुरगति में पर संपति देखत राग उदय दुख होई।
मानुष योनि अनेक विपति मय सर्वसुखी नहीं कोई ॥
कोई इष्ट वियोगी बिलखे कोई अनिष्ट संजोगी।
कोई दीन दारिद्री दीखे कोई तन का रोगी ॥
किस ही घर कलिहारी नारो कै बैरी सम भाई।
किस ही के दुःख बाहर दीखे किस ही उर दुचिताई ॥
कोई पुत्र बिना नित झूरे होय मरे तब रोवै ।
खोटी संतति से दुख उपजे क्यों प्राणी सुख सोहै ॥
पुण्य उदय जिनके तिनके भी नाहीं सदा सुख साता।
यह जग बास यथारथ दीखत सब ही हैं दुखदाता ॥

जो संसार विषै सुख होतो तीर्थंकर क्यों त्यागैं।
काहे को शिव साधन करते संयम सों अनुरागैं॥
देह अपावन अथिर घिनावनि यामें सार ना कोई।
सागर के जल सों शुचि कीजे तो भी शुद्ध न होई॥
सप्त कुधातु भरी मल मूरति चर्म लपेटी सोहै।
अन्तर देखत या सम जगमें और अपावन को है॥
नव मल द्वार स्रवें निशि वासर नाम लिये घिन आवै।
व्याधि उपाधि अनेक जहां तहां कौन सुधी सुख पावै॥
पोषत तो दुख दोष करे अति सोखत सुख उपजावै।
दुर्जन देह स्वभाव बराबर मूरख प्रीति बढ़ावै॥
राचन योग्य स्वरूप न याको विरचन योग्य सही है।
यह तन पाय महा तप कीजे यामें सार यही है॥
भोग बुरे भव रोग बढ़ावें बैरी हैं जग जीके।
नीरस होंहि विपाक समय अति सेवत लागें नीके॥
वज्र अग्नि विष से विषधर सों भी हैं अधिक दुखदाई।
धर्म रतन के चोर चपल अति दुर्गति पंथ सहाई॥
ज्यों ज्यों भोग संयोग मनोहर मनवांछित जिया पावै।
तृष्णा नागनि त्यों त्यों डंके लहर लोभ विष लावै॥
मोह उदय यह जीव अज्ञानी भोग भले कर जाने।
ज्यों कोई जन खाये धतूरा सो सब कंचन माने॥
मैं चक्री पद पाय निरन्तर भोगे भोग घनेरे।

तौ भी तनक भयो नहीं पूरण भोग मनोरथ मेरे ॥
राज समाज महा अघ कारण बैर बढ़ावन हारो ।
वेश्या सम लक्ष्मी अति चंचल याका कौन पत्यारा ॥
मोह महा रिपु बैर चितारयो जग जिय संकट डारे ।
तन कारागृह वनिता बेड़ी परियन जन रखवारे ॥
सम्यक् दर्शनज्ञान चरण तप यह जिय के हितकारी ।
येही सार असार और सब यह चक्री चित धारी" ॥

**सर्वज्ञः सर्वतो भद्रः सर्वदिग्वदनो विभुः ।**
**सर्व भाषः सदा वन्द्यः सर्व सौख्यात्मको जिनः॥१६**

अन्वयार्थ—(सर्वज्ञः) सर्व पदार्थों को जानने वाला (सर्वतः भद्रः) सब तरह से कल्याण रूप (सर्वदिग्वदनः) चारों दिशाओं में जिसका मुख दिखाई देता है (विभुः) ज्ञान की अपेक्षा सर्व व्यापक है (सर्व भाषः) जिस की वाणी का परिणमन सर्व भाषाओं में होजाता है (सर्व सौ-ख्यात्मकः) सर्व को सुखदायी (जिनः) ऐसा जिनेन्द्र (सदा वन्द्यः) सदा वन्दने योग्य है ।

**अर्हन त्रैलोक्यसाम्राज्यं अर्हन पूजां सुरेशिनाम्**
**हतवान् कर्मसंपूतं अर्हन्नामा ततः स्मृतः ॥२०॥**

अन्वयार्थ—(त्रैलोक्य साम्राज्यं) तीन लोक के राज्य करने को (अर्हन) योग्य (सुरेशिनाम् पूजां) इन्द्रों द्वारा

पूजा करने के (अर्हन) योग्य (कर्मसंपूतं) चार घातीय कर्म समूह को (हतवान) जिसने नाश कर दिया है (ततः) इस कारण से (अर्हन्नामा) अरहन्त का नाम (स्मृतः) कहा है ॥

भावार्थ— प्रभु अनन्त गुणों के स्वामी हैं, जितने गुण हैं उतने ही उन गुणों की अपेक्षा से प्रभु के नाम हैं जिनको कि वचनों के द्वारा कहने को जिह्वा असमर्थ है आचार्य प्रभु का स्मरण कुछ गुणों के द्वारा कर रहे हैं।

सर्वज्ञः—प्रभु सार्थक सर्वज्ञ हैं, वे अपने केवलज्ञान द्वारा विना इन्द्रियादिक के सहारे के जगत के समस्त पदार्थों के गुण पर्यायों को क्रम रहित एक ही समय में प्रत्यक्ष जानते हैं, इसी लिये सर्वज्ञ हैं (सर्वतो भद्रः) भद्र का अर्थ है मंगल, कल्याण, श्रेष्ठ, दयावान आदि यह समस्त ही गुण प्रभु में पूर्ण रूप से पाये जाते हैं। प्रभु में अन्तिम सीमा को लिये हुवे विराजमान हैं, प्रभु का नाम मात्र पापों का नाश करने वाला है, आनन्द लाने वाला है इस लिये प्रभु मंगल स्वरूप हैं। प्रभु के समवशरण में समस्त जाति विरोधी जीवों का वैर भाव दूर हो जाता है सिंह और हाथी, व्याघ्र और गौ बिलाव और हंस इत्यादिक जाति विरोधी जीव वैर बुद्धि छोड़ आपस में मित्रता को प्राप्त होते हैं। वास्तव में वीतरागता की अद्भुत महिमा है। केवल ज्ञान के प्रकाशमान होने पर जिस स्थान पर

स्वामी विराजमान होते हैं वहां से सौ२ योजन तक दुर्भिक्ष नहीं रहता, सुभिक्ष होता है। समवशरण में किसी प्राणी का बध नहीं होता चेतन या अचेतन कृत सब उपसर्ग का अभाव होता है, समस्त मनुष्यों में मैत्री भाव हो जाता है, समस्त ऋतु के फल फूल पत्रादिक वृक्षों पर खिल उठते हैं, भूमि दर्पण समान शुद्ध और निर्मल हो जाती है शीतल मंद सुगन्ध पवन चलती है, समस्त जीवों के आनन्द प्रगट होता है, चारों प्रकार के देव जय२ कार करते हैं इत्यादि अतिशय प्रकट होते हैं, प्रभु की दिव्य ध्वनि को सुन कर सब ही जीव प्रभु के हितोपदेश रूप अमृत का पान कर हर्षायमान होते हैं इस प्रकार परम प्रभु सर्व ही ओर से समस्त जीवों के लिये परम मंगल स्वरूप हैं और साक्षात उन के कल्याण कर्त्ता हैं।

(सर्वदिग्वदनः) प्रभु की ऐसी अतिशय होती है कि जब केवल अरहन्त समवशरण में विराजमान होते हैं तो उनके चार मुख चारों दिशाओं में दिखाई पड़ते हैं, इस लिये स्वामी समस्त दिशाओं में दर्शन देने वाले हैं।

(विभुः)ज्ञान की अपेक्षा सर्व व्यापक हैं, प्रभु का ज्ञान सर्व ज्ञेयों में व्यापक है, अन्यमति जैसे कहते हैं कि सब पदार्थों में ब्रह्म आपही विद्यमान है ऐसा नहीं है। जैसे दर्पण में पदार्थ झलकते हैं ऐसे ही जगत के समस्त पदार्थ

प्रभु के ज्ञान में झलकते हैं, दर्पण जुदा है, पदार्थ जुदा है वैसे ही ज्ञान जुदा है पदार्थ जुदे हैं।

सर्वभाषः—प्रभु की दिव्य ध्वनि की अद्भुत महिमा है यह त्रैलोक्य वर्ती जीवों का परम उपकार करने वाली है मोहान्धकार को विध्वन्स करने वाली है, सब ही जीव अपनी२ भापा में शब्द अर्थ को ग्रहण करलेते हैं, निरक्षरी होते हुये भी यह भिन्न २ जीवों की भिन्न २ भाषा रूप परिणमन कर जाती है, इस को सुन कर समस्त जीवों के कोई संशय नहीं रहती यह स्वर्ग मोक्ष के मार्ग को साक्षात प्रगट करने वाली है, इस दिव्य ध्वनि की महिमा वचनों द्वारा प्रगट करने को गणधर इन्द्रादिक भी समर्थ नहीं हैं।

(सर्व सौख्यात्मकः) जगत के सब जीवों को परम सुख के देने वाले हैं। प्रभु स्वयं अनन्त सुख के धारक हैं, जो उनको ध्येय मान उनकी उपासना करता है, उनका ध्यान करता है, स्मरण करता है, उनको कोई पाप छू नहीं पाता उनके सब पातक दूर भाग जाते हैं, वे स्वयं अपने आत्म बल को प्रकाश में लाते हुये कर्मों का क्षय कर पूजक से पूज्य बन जाते हैं। और अपने अनन्त सुख का आस्वादन आप ही लिया करते हैं।

जिनः—स्वामी ने कर्म रूपी महान शत्रुओं को जीता इस लिये जिन (विजेता) ऐसा नाम पाया।

सदावन्द्य—सदैव वन्दने योग्य हैं, प्रभु सौ इन्द्रों द्वारा सदा नमस्कार किये जाते हैं भुवन वासी देवों के ४० इन्द्र होते हैं, व्यन्तर देवों के ३२ होते हैं कल्पवासियों के २४ इन्द्र होते हैं, चन्द्रमा और सूर्य दो ज्योतिष देवों के इन्द्र हैं, मनुष्यों का इन्द्र चक्रवर्ति, तिर्यंचों का इन्द्र अष्टापद होता है,जब इतने महान पुरुष प्रभु के चरणों में मस्तक झुकाते हैं तो अन्य जीवों की क्या बात है।

अरहन्त प्रभु ही तीन लोक के साम्राज्य के योग्य हैं प्रभु को लौकिक राज्य ऐश्वर्य विभूति की आवश्यकता नहीं, वे तो वीतराग हैं। उनका शासन समस्त जीवों का कल्यान करता है, जगतोद्धारक है, स्वाधीनता और निरावलम्बनता का पाठ पढाने वाला है, जो प्रभु के परम अहिंसा रूप उपदेश को सुनता है, उसी का चित्त प्रभु के शासन की ओर आकर्षित होता है। प्रभु द्वारा प्रतिपादित मोक्ष मार्ग सर्वोत्कृष्ट है। अपनी उदारता तथा महिमा द्वारा मिथ्या मार्ग को हटाने वाला है, जो भव्य जीव आपके शासन का आश्रय लेते हैं उनके रागद्वेष मोह रूपी संसार का अभाव हो जाता है। मोक्ष लक्ष्मी की जो अक्षय है अनन्त है प्राप्ति होती है। इस लिये जगत के जीवों के ऊपर आपका ही परम कल्याण मय, मंगल स्वरूप सुखदायक शासन है, आप उनके सच्चे स्वामी हैं।

पहले कहे हुवे सौ इन्द्रों द्वारा आप पूजनीय हैं "अमर समूह आन अवनि सों घस२ शीस प्रणाम करे हैं"। इन्द्र आपकी पूजा रचता भक्ति भाव से आपके दर्शन करता२ थकता नहीं। स्वामी ने ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय इन चार घातिया कर्मों को नष्ट कर अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन अनन्त सुख और अनन्त बल को प्राप्त किया जीवन्मुक्त, साकार परमात्मा कहलाये जगत् के जीवों द्वारा पूज्य हुवे, इसी वास्ते "अर्हन्त" ऐसा सार्थक नाम पाया, परम विभूति सहित होने से परमेश्वर हैं। मोक्ष मार्ग के विधायक होने से विधाता हैं। ये ही सच्चे आप्त हैं, देव हैं और परमपूज्य अर्हन्त हैं।

रागद्वेषादयो येन जिताः कर्ममहा भटाः।
कालचक्र विनिर्मुक्तः स जिनः परिकीर्तितः।२१।

अन्वयार्थ—(येन) जिसने (रागद्वेषादयः) रागद्वेषादि औपाधिक भावों को (कर्म महाभटाः) चार कर्म रूप महा योद्धाओं को (जिताः) जीत लिया है (कालचक्र विनिर्मुक्तः) काल के चक्र के आक्रमण से रहित हैं (सजिनः) वे ही जिन (परिकीर्तितः) कहे गये हैं।

स स्वयम्भूः स्वयं भूतं संज्ञानं यस्य केवलं।
विश्वस्य ग्राहकं नित्यं युगपद्दर्शनं तथा।२२।

अन्वयार्थ (यस्य) जिस आप्त के (विश्वस्य ग्राहकं) समस्त जगत को ग्रहण करने वाला (नित्यं) अविनाशी (केवलं) असहाय (संज्ञानं)सम्यक्ज्ञान (तथा दर्शनम्) तथा केवल दर्शन (युगपत्) एक साथ (स्वयं भूतं) आप ही प्रगट हुवे हैं (सस्वयंभूः) वही स्वयम्भू है।

भावार्थ— अनादि काल से जीव का महान शत्रु मोहनीय कर्म है, यही इस संसारी जीव को रागी द्वेषी मोही बना कर आत्मविरोधी मार्ग में पटक देता है इसी का भुलाया हुवा जीव अपने निजात्म स्वरूप में स्थिरता को नहीं पाता है। मोहनीय कर्म के दो भेद हैं दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय। दर्शन मोहनीय आत्मा के सम्यक्त गुण का घात करता है और चारित्र मोहनीय आत्मा के पूर्ण समता रूप वीतराग परिणाम के प्रगट होने में बाधक होता है। दर्शन मोहनीय के उदय से यह जीव मिथ्यात्वी होता है और चारित्र मोहनीय के उदय से इस जीव के क्रोधादि कषाय रूप परिणाम होते हैं। मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी कषाय के अभाव से सम्यक्त होता है इसी लिये चतुर्थम गुण स्थान वर्त्ती अव्रती सम्यक् दृष्टि के मिथ्यात्व का और अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ कषाय का अभाव हो जाता है। जब जीव को चतुर्थम् गुणस्थान से क्षायिक सम्यक् दर्शन हो जाता है तो फिर

वह सम्यक्ती जीव मोक्ष को शीघ्र ही प्राप्त कर लेता है। जब चारों अनन्तानुबंधी कषाय और मिथ्यात्व, मिश्र और सम्यक् प्रकृति इन सात कर्म प्रकृतियों का क्षय हो जाता है तब क्षायिक सम्यक् दर्शन होता है। अप्रत्याख्यानावरण कषाय का अभाव करने पर ग्रहस्थ के ग्यारह प्रतिमा रूप चारित्र का पालन करता है फिर प्रत्याख्यानावरण कषाय के दूर होने पर दिगम्बर दीक्षा धारण कर मुनि के तेरह प्रकार के चारित्र का पालन करता है आत्मध्यान के प्रभाव से मोह के बल को क्षीण करके क्षयक श्रेणी में आरूढ होता है। क्षायिक सम्यक्ती के नरक, तिर्यंच व देवायु की सत्ता नहीं होती। जब सम्यक् दृष्टि सातवें अथवा आठवें गुणस्थान में होता है तो १४८ कर्म प्रकृतियों में से सात ऊपर कही हुई प्रकृतियां और ऊपर कही हुई तीन आयु कर्म की प्रकृतियों की अर्थात् (७+३) की सत्ता न होकर मात्र १३८ की सत्ता होती है। उन्नति करते हुवे नोवें गुणस्थान में शुक्ल ध्यान के प्रभाव से यह साधु १३८ में से ३६ कर्म प्रकृतियों की और निर्जरा कर डालता है। नवें गुणस्थान के नो भाग होते हैं। पहले भाग में १८ प्रकृतियों का क्षय करेगा नर्क गति, नर्क गत्यानुपूर्वी, तिर्यंच गति, तिर्यंचगत्यानु पूर्वी, एकेन्द्रियादि ४ जाति, स्थान गृद्धि आदि ३ निद्रा,

उद्योत, आताप, साधारण, सूक्ष्म, स्थावर, दूसरे भाग में अप्रत्याख्यानावरण ४ प्रत्याख्यानावरण ४ इन आठ कषायों का क्षय करता है, तीसरे भाग में नपुंसक वेद को चौथे भाग में स्त्री वेद को पांचवें भाग में हास्यादि छह को छटे भाग में पुंवेद को, सातवें भाग में संज्वलन क्रोध को, आठवें भाग में संज्वलन मान को नौवें भाग में संज्वलन माया को, इस प्रकार नौंमे गुणस्थान में ३६ प्रकृतियों का क्षय कर डालता है। दसवें सूक्ष्म साम्प्राय में संज्वलन लोभ का क्षय करता है। बारहवें क्षीण मोह गुणस्थान में १६ कर्मों को क्षय करता है अर्थात् ज्ञानावरण ५ दर्शनावरण ४ निद्रा, प्रचला, अन्तराय ५ कुल १६ जब तेरहवें संयोग केवली गुणस्थान में अरहन्त पद में पहुंचता है तब कुल १४८ कर्म प्रकृतियों में से ६३=(७+३+३६+१+१६) कर्म प्रकृतियों का क्षय कर चुकता है।

इस प्रकार प्रभु ने इन उपर्युक्त ६३ प्रकृतियों को तथा दर्शनावरणीय, ज्ञानावरणीय, मोहनीय और अन्तराय इन चार घातिया कर्मों को सर्वथा क्षय कर डाला तब स्वामी क्षीण मोह वीतराग, यथा ख्यात संयमी होगये, तब आप कर्म शत्रुओं के विजेता सच्चे जिन कहलाये।

इस प्रकार जो भी जीव स्वात्मानुभव तथा आत्मबल के द्वारा रागद्वेषादि औपाधिक भावों को चार घातिया

कर्म रूप शत्रुओं को जीत लेता है जो जन्म, जरा, मृत्यु के रोग से निवृत होजाता है अर्थात काल चक्र को जीत लेता है वही वास्तविक विजेता अर्थात जिन कहलाता है। निश्चय नय से जीव अपने शुद्ध दर्शन, ज्ञान, सुख, वीर्य मई स्वभाव में रहने वाला है अनादि काल से मिथ्यात्व तथा अज्ञान के कारण निज स्वरूप को न जानता हुवा कर्म जनित अवस्थाओं में ही तन्मय होकर उनके अनुकूल आचरण करता हुवा पर समय रूप हो रहा है। यही जीव जब कर्म जनित अवस्थाओं को अपना स्वरूप न जान अपने स्वरूप को भली भांति पहिचान कर उसमें ही रमण करता है, तो वह वीतराग भाव को बढ़ाता हुवा कर्म बन्धनों से छूटता चला जाता है और परम्परा से कर्मों से सर्वथा रहित हो मोक्ष पद को प्राप्त कर लेता है। निश्चय नय से आत्मा ज्ञायक शुद्ध स्वभाव है अबद्ध है, एक है, निश्चल है अभेद सामान्य है, रागादि रहित वीतराग है, परसंयोग रहित है, अपनी ही शुद्ध परिणति, वीतराग परिणति का ही कर्ता है अशुद्ध निश्चय नय से जीव को रागादि विभाव भावों का कर्ता कहदिया जाता है। एक द्रव्य अपने निज स्वभाव को छोड़ कभी अन्य रूप परिणमन कर नहीं सकता चेतन द्रव्य अचेतन नहीं होसकता अचेन चेतन रूप परिणमन नहीं करसकता जिस द्रव्यका

जो परिणमन होता है उसका उसीमें होता है। प्रत्येक द्रव्य अपनी२ अवस्था का आप ही उपादान कारण है जैसा उपादान कारण होता है वैसा ही कार्य होता है। सुवर्ण की डली से सुवर्ण की वस्तु, लोहे की डली से लोहे की वस्तु बनती है। इसी प्रकार अचेतन जड़ अपनी अचेतन पर्याय का और चेतन द्रव्य अपनी चेतन परिणति का कर्त्ता है। प्रत्येक कार्य के लिये उपादान और निमित्त कारणों की आवश्यकता होती है इन दोनों कारणों के बिना कार्य नहीं होसकता इसी नियम के अनुसार ज्ञानोवरणादि अष्ट प्रकार के द्रव्य कर्मों के बंध होने में उपादान कारण कर्म वर्गणायें हैं वे पुद्गल कार्माण वर्गणायें आप ही अपनी शक्ति से द्रव्य कर्म रूप हो जाते हैं। इनके इस उपादन रूप कार्य के लिये निमित्त कारण जीव के अशुद्ध परिणाम हैं। जब आत्मा पूर्व बद्ध कर्मोदय से अपने प्रदेशों में सकंप होता है और क्रोधादि कषायों से मलीन होता है, तब ही इस आत्मा के अशुद्ध योग और उपयोग कर्म बन्ध होने में निमित होते हैं, जो आत्मा शुद्ध है वह कर्म बन्ध में निमित्त भी नहीं है, जब हम उपर्युक्त आत्मा के शुद्ध स्वरूप का विचार करते हैं तो यही अनुभव होता है कि यह आत्मा स्वभाव से इन पौद्गलिक कर्मों का न उपादान कर्ता है और न निमित कर्ता है।

इस प्रकार जब तक आत्मा से योग तथा उपयोग के अशुद्ध होने के कारण यथा योग्य नाम कर्म तथा मोहनी कर्म के उदय का नाश न हो तब तक अशुद्ध योग और उपयोग होते रहते हैं। जब जीव को सम्यक् दर्शन की प्राप्ति हो जाती है तो जैसे हंस दूध को पानी का भेद विज्ञान रखता हुवा दूध को पीलेता है व पानी को छोड़ देता है, वैसे ही सम्यक् दृष्टि जीव शुद्धात्मा को ग्रहण करता है और पर भावों को छोड़ देता है और पर का ज्ञाता द्रष्टा मात्र रहता है, कर्त्ता धर्त्ता नहीं होता है। कर्म को तथा कर्म फल को अपनाता नहीं उनको केवल जानता मात्र है। इस प्रकार एक सम्यक् दृष्टि अपने आत्म बल को बढाता हुवा साधु पद में प्रवेश कर स्वरूपाचरण के समय भेद ज्ञान रूपी तेज छेनी से अपने अन्तरंग का परदा तोड़ कर और शरीर भोग तथा रागादि विभाव परिणामों से अपने आत्मिक भावों को जुदा करके अपने आत्मा में अपने आत्म हित के लिये अपने आत्मा को आप ही ग्रहण करता है। तब गुण, गुणी, ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय में कुछ भेद नहीं रह जाता है, ध्यान मय अवस्था में सब एक रूप होजाते हैं, विकल्प मिट जाता है। जिस आत्म ध्यान की अवस्था में न ध्यान का, न ध्याता का और न ध्येय का कोई भेद है, और न बचन से कहने योग्य ही इन में भेद है। जहां

चेतना भाव ही कर्म, चेतना ही कर्ता और चेतना ही क्रिया है, कर्ता कर्म क्रिया का भाव अभेद रूप हो जाता है, शुद्ध भाव की स्थिर दशा हो जाती है जिस में दर्शन, ज्ञान चारित्र भी एक रूप होकर प्रकाशमान हो रहे हैं, जिस ध्यान अवस्था में प्रमाण, निक्षेप का प्रकाश अनुभव में नहीं आता, यही अनुभव होता है कि मैं दर्शन, ज्ञान, सुख, वीर्य रूप हूं, मेरे में अन्य कोई दूसरा भाव नहीं है, मैंही साध्य हूं और मैंही साधक हूं कर्म और कर्म फल से रहित भी मैं ही हूं, मैं चेतन्य पिंड हूं और प्रचंड खंड रहित उत्तम गुणों का पिटारा हूं और सर्व पापों से भिन्न हूं इस प्रकार एक साधु जब स्वयम् आत्म ध्यान में लीन होता है तो उस दशा में जो अकथनीय आनन्द प्राप्त होता है वह आनन्द न तो अभिइन्द्र को ही प्राप्त होता है और न गागेंद्र और चक्रवर्ती को, उस समय शुक्लध्यान रूपी अग्नि के द्वारा चार घातिया कर्म रूपी वन को भस्म कर केवल ज्ञान को प्राप्त होता है और उसके द्वारा तीन काल की बातों को जान कर भव्य जीवों को मोक्षमार्ग का उपदेश करता है, यह अरहन्त अवस्था है ।

तीर्थंकर भगवान जन्म से ही मति, श्रुति, अवधि तीन ज्ञान के धारी होते हैं, उनको किसी से उपदेश सुनने की आवश्यकता नहीं होती है, अपने गुरु आप ही होते

हैं, "नमः सिद्धेभ्य" कह कर स्वयम् ही दिगंबरी दीक्षा ग्रहण करते हैं, स्वयम् तपश्चरण करके कर्म शत्रुओं को क्षय कर जीवन्मुक्त पद को प्राप्त होते हैं, इस प्रकार जो भव्यात्मा स्वयं धर्म पुरुषार्थ का साधन कर अपने ही आत्म बल द्वारा, अपने ही स्वात्म ध्यान रूपी अग्नि में कर्म रूपी मल को भस्म कर डालते हैं अक्षय अविनाशी अव्यावाध केवल ज्ञान को प्राप्त होते हैं वे ही वास्तविक सार्थक स्वयम्भू हैं।

ये नाप्तं परमैश्वर्यं परानन्द सुखास्पदम्।
बोधरूपंकृतार्थो ऽसावीश्वरः पटुभिः स्मृतः ॥२३॥

अन्वयार्थ—(येन) जिसने (परानन्द सुखास्पदम्) परमानन्दमई (बोध रूपं) ज्ञान मई (परम) उत्कृष (एश्वर्यम्) ईश्वर-पना (आप्तं) प्राप्त किया है (असौ) वही (कृतार्थः) कृत कृत्य। (ईश्वरः) ईश्वर (पटुभिः) बुद्धिमानों से (स्मृतः) माना गया है।

शिवं परम कल्याणं निर्वाणं शान्तमक्षयं।
प्राप्तं मुक्ति पदं येन सशिवः परिकीर्तितः ॥

अन्व—(येन) जिसने (परम कल्याणं) परम कल्याणं रूप (शिवं) मङ्गल रूप (शान्तं) वीतराग मई (अक्षयं) अविनाशी (मुक्ति पदम्) मोक्ष पद रूप (निर्वाणम्) निर्वाण

को (प्राप्तं) प्राप्त किया है (स शिवः) वही शिव (परिकीर्तितः) कहा गया है।

भावार्थ—शुद्ध निश्चय नय से जीव सिद्ध परमेष्ठी के समान ही है। एक सम्यक् दृष्टि योगी भेद विज्ञान के द्वारा अपने आत्मा को शुद्ध अनुभव करता है। अनुभव के सतत अभ्यास से आत्मा में समभाव जागृत होता है। राग द्वेष परिणामों का विकार सर्वथा मिट जाता है। ऐसा योगी अपने आत्मा के निज स्वभाव में ही स्वाद लेने की ओर झुकता चला जाता है। अपने आप में ही अपने द्वारा अपने आपको देखता है। निजातम अनुभव के समय जो आनन्द आता है वह अपूर्व होता है। अतीन्द्रिय परमानंद है। आत्मा स्वयम् आनंदमय है। जिस समय एक भव्यात्मा अपने आत्म स्वरूप में रमण करता है उस समय जो आनन्द आता है वह अकथनीय होता है। जैसे मिष्ट फल के स्वाद में उपयोग के जोड़ने पर फल की जैसी स्वाभाविक मिष्टता होती है वैसा ही स्वाद आता है ठीक उसी प्रकार घातिया कर्मों के क्षय हो जाने पर केवल ज्ञान के साथ २ जो अनंत सुख तथा परमानंद आत्मा में अनुभव होता है वह वचनातीत है।

अरहंत परमेष्ठी सर्वज्ञ होने पर पूर्ण ज्ञानमय हैं। केवली हैं। स्वामी का ज्ञान निर्मल है। अंतराय कर्म के

क्षय हो जाने से अनंतबल भगवान की आत्मा में प्रगट हो जाता है, इसी वास्ते जगत के ईश्वर कहलाते हैं। अरहंत परमेष्ठी ही कृतकृत्य हैं। जो कुछ करना था सो कर चुके। अब कोई कार्य करना बाकी रहा नहीं—मोहनीय कर्म के अभाव हो जाने से स्वामी के रागद्वेष नष्ट हो गये, इच्छाओं का सर्वथा अभाव हो गया, प्रभु परम वीतरागी हो गये समदर्शी हो गये। इच्छा का अभाव हो जाने से प्रभु किसी कार्य को बुद्धि पूर्वक कैसे करें? यदि प्रभु जगत के जीवों को उनके पाप पुण्य कार्यों का फल देवें तो वह वीतरागी हो नहीं सकते, जिससे राग होगा उस से प्रसन्न हो कर उसकी प्रशंसा करेंगे, उसके हित की बातें सोचा करेंगे। जिससे द्वेष होगा उसका अहित चाहेंगे उसको दंड देंगे। यदि इस प्रकार से जगत के जीवों को सुख दुख का दाता कोई व्यक्ति विशेष परमात्मा माना जावे तो वह वीतरागी ठहरता नहीं, उस में और एक संसारी आत्मा में कोई भेद नहीं रहता।

यदि परमात्मा ही जगत के कर्ता हैं तो वे दुष्टों को क्यों उत्पन्न करें? ऐसे ही मनुष्यों को पैदा करें जो सदैव उनकी आज्ञा का पालन करते रहें, संसार में कोई झगड़ा विवाद काहे को होने देवें, कोई सुखी कोई दुखी क्यों हो? ऐसी दशा जगत की देखते हुये यह बात असंभव हो जाती

है कि एक सर्व शक्तिमान समदर्शी दयालु परमात्मा ऐसा अनीति पूर्वक व्यवहार करे। अरहन्त प्रभु के योगों की चपलताई रागद्वेष पूर्वक नहीं रही—प्रभु सर्वज्ञ हैं, अनन्त शक्ति वाले हैं, जगत के समस्त पदार्थों की भूत भविष्यत वर्तमान काल संबंधी समस्त पर्यायों तथा दशाओं को साक्षात् देखते और जानते हैं, तब सर्वशक्तिमान् होते हुवे उन सब विचित्र २ घटनाओं को जो संसार के जीवों को डराने वाली हैं, उनका विध्वंस कराने वाली है, क्यों नहीं रोकते, जगत में उपद्रव क्यों होने देवें ? युक्ति पूर्वक विचारने पर यह बात किसी प्रकार नहीं जचती कि ईश्वर कर्ता धर्ता हो किसी को सुख दुख देता हो। प्रभु तो सर्वज्ञ, वीतराग, हितोपदेशी हैं, वह संसार के झंझटों से सर्वथा रहित हैं, न उनके संकल्प विकल्प है, न उनके इच्छा है, उनके क्षुधा तृषा रोग शोक आदि की बाधा नहीं होती, स्वयं कामना व रागद्वेषादि से रहित हैं, क्षायिक सम्यक्ती हैं, परम वीतरागी हैं, अनन्त ज्ञानी हैं, अनन्त दर्शी तथा अनन्त बली हैं, इसी लिये वे ही सच्चे कृत्यकृत्य सकल परमात्मा हैं।

अरहन्त परमेष्ठी परम कल्याण रूप हैं, अनन्त सुख धारक हैं परम पूज्य हैं, जीवन्मुक्त परमात्मा हैं, जहां प्रभु विराजमान होते हैं, समस्त जीवों को वहाँ सुख और

शान्ति की प्राप्ति होती है, जो उनका ध्यान करता है, स्मरण करता है उसके सब दुःख संकट दूर हो जाते हैं। प्रभु की दिव्य ध्वनि जब खिरती है तो समवसरण में सब ही श्रोतागण उसे सुन कर हर्षायमान होते हैं कितने ही भव्य जीव उसको सुन कर परम तृप्त हो जाते हैं, अपना अज्ञान दूर कर सम्यक्ती तथा सम्यक् ज्ञानी हो जाते हैं, प्रभु का अरहन्त पना उनके अपने लिये तो हित-कर है ही क्यों कि वह सकल परमात्मा हो गये, परन्तु दूसरे के लिये भी (स्वयं स्वामी के परम वीतरागी होते हुवे) ऐसा हितकारी होता है कि उनका भी परम कल्याण हो जाता है वे भी उसी पथ के अनुयायी हो कर अरहंत हो जाते हैं या मोक्ष मार्ग का साधन मुनि, श्रावक या सम्यक्त भाव में करने लग जाते हैं, और परंपरा से मोक्ष पद को प्राप्त करके सिद्ध निकल परमात्मा बन जाते हैं।

अरहंत और सिद्ध परमेष्ठी ही परम मंगल रूप हैं इन का स्मरण, इनका ध्यान, प्रत्येक कार्य में विघ्न के निवारण का कारण है।

(मं=पाप, गल=गाले) जो पाप को गाले अर्थात दूर करे वह मंगल कहलाता है तथा (मंग=आनंद—सुख, लायति=लावे ) अर्थात् जो सुख को लावे, आनन्द को लावे वह मंगल है। अरहंत तथा सिद्ध परमेष्ठी के स्मरण

से सब पातक दूर भाग जाते हैं। आनन्द के दाता हैं। इस लिये वह ही वास्तविक मंगल हैं। उनका ध्यान करने से तथा श्रद्धा व ज्ञान पूर्वक उनके गुणों का स्मरण करने से पाप का शमन और पुण्य का संचय होता है। परम निर्वाण प्राप्त सिद्ध परमेष्ठी का स्मरण आत्मसिद्धि करने में परम सहायक है। यद्यपि वीतराग होने से अरहंत प्रभु भक्त जनों पर कुछ अनुग्रह नहीं करते तथापि उनके नाम व गुण स्मरण में कुछ एसी विचित्र शक्ति है कि जिसमे प्रभु के बिना किसी प्रकार के दख़ल दिए ही भक्त जनों के पाप कट जाते हैं और श्रेष्ठ पुन्य का बंध हो जाता है। तथा आतम अनुभव की जागृति का निमित्त होता है। क्रमशः प्रभु का भक्त कर्म प्रकृतियों का क्षय करता हुआ स्वयम् आत्मस्थ हो जाता है। अपने कर्म शत्रुओं को विजय करके अनंत ज्ञानादि लक्ष्मी को प्राप्त कर प्रभु के समान स्वयम् अरहंत हो जाता है। फिर अघातिया कर्मों का नाश करके स्वयम् परम निर्वाण पद को प्राप्त करता है।

मोक्ष पद अक्षय है, अविनाशी है, शोक दुख, भय से सर्वथा रहित है। जन्म, जरा, रोग मरण आदिक वहां नहीं हैं। सिद्ध परमात्मा अविनाशी हैं। अजर हैं, अमर हैं, शुद्ध हैं, अक्षय हैं अनंत हैं, परम शान्ति तथा

कल्याण के कर्त्ता हैं। ऐसे ही परमात्मा का स्मरण भक्ति ध्यान भव्य जीवों के कल्याण का कारण होता है। वे ही सच्चे शिव हैं, अन्य और कोई व्यक्ति जिसको यथार्थ शिव के नाम से जगत के जीव पूजते हैं, शिव नही हैं ॥

**जन्ममृत्युजराख्यानि पुराणि ध्यानवन्हिना।**
**दग्धानि येन देवेन तं नौमि त्रिपुरान्तकम् ॥२५॥**

अन्व० (येन देवेन) जिस देव ने (ज्ञान वन्हिना) ध्यान की अग्नि से (जन्म मृत्यु जराख्यानि पुराणि) जन्म जरा मरण नगरों को (दग्धानि) जला दिया है (तं त्रिपुरान्तकम्) उस त्रिपुरान्त भगवान को (नौमि) नमस्कार करता हूं।

**महामोहादयो दोषा ध्वस्ता येन यदृच्छया।**
**महाभवार्णवोत्तीर्णो महादेवः स कीर्तितः॥२६॥**

अन्वयार्थ (येन) जिसने (यदृच्छया) अपनी इच्छा से (महामोहादयो दोषः) महा मोहादि दोषों को (ध्वस्ता) नाश किया है, (महाभवार्णवोत्तीर्ण) महान संसार रूपी समुद्र से जो पार हो गया है (स महा देवः) वह ही महादेव कीर्तितः) कहा गया है।

भावार्थ—अन्य मतावलंबियों के पुराणों में कथा आती है कि शिव ने त्रिपुर नामा असुर को परास्त करके विजय प्राप्त की थी और उसके तीन नगरों का विध्वंस

कर डाला इसी कारण शिव को त्रिपुरान्तक कहा है। यह तो एक लौकिक बात है साधारण शत्रुओं पर विजय प्राप्त करना उसके नगर तथा राष्ट्र को भ्रष्ट कर देना, उसकी सेना तथा प्रजा आदि को विध्वंस कर डालना एक साधारण बात है। आज भी इस प्रकार की शक्ति संसार में कितने ही पाशविक मनोवृत्ति वाले मनुष्यों में पाई जाती है। इस शक्ति के कारण यह शिव नहीं कहला सकते शिव तो वही है जो स्वयं कल्याण रूप है, दूसरों का कल्याण करता है, जिस देव ने जन्म जरा मरण रूपी नगरों को सदैव के लिये नष्ट कर दिया है जिन्होंने अजर और अमर पद प्राप्त किया है वह ही सच्चे त्रिपुरान्तक हैं वे अरहंत भगवान हैं उन में जन्म जरा मरण नहीं है जीवन मुक्त हैं चार घातिया कर्मों के नष्ट होने पर वेही स्वयं सिद्ध परमात्मा होंगे।

अरहंत भगवान ने शुक्ल ध्यान की अग्नि से घातीय कर्मों का नाश करके जन्म जरा मरण रहित अरहंत पद को प्राप्त किया, अब कोई कारण बाकी नहीं रहा जिससे वह संसार में फिर से भ्रमण कर सकें। मोह जीव का एक बड़ा शत्रु है मोह ही का नाम संसार है, चतुर्गति रूप संसार में संसारी जीव जो भी दुख भोगता है उसका प्रबल कारण मोह है भगवान ने मोह के स्वरूप को और उसके

फल को अच्छी तरह से जान लिया है । संसार के स्वरूप को खूब विचारा । यह बात अच्छी तरह से उनको दृढ़ हो गई कि इस संसार रूपी महा भयानक बन में इस जीव को कभी सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती । रहट की घड़ी के समान परिवर्तन होता ही रहता है । इस संसार रूपी बन से बचने के लिये भगवान ने समस्त परिग्रह का त्याग किया, मोह रूपी महान बन को ध्यान रूपी अग्नि द्वारा भस्म किया ऐसा कि संसार का अंकुर फिर फूटने न पावे । मोह का नाश होने पर शेष तीन घातिया कर्मों का भी नाश कर अनंत चतुष्टय धारक अरहंत परमात्मा कहलाये, जिनको देवों के देव इन्द्रादिक मस्तक झुका कर नमस्कार करते हैं वे ही सच्चे महादेव हैं उनके सिवाय अन्य कोई भी व्यक्ति महादेव नही है । जिसके विषय भोगों की इच्छायें बनी हुई हैं, जिसके काम वासना प्रबल है स्त्री के प्रति जिसका राग भाव बना हुआ है, जो शत्रुओं के भय से शस्त्रादिक अपने हाथ में रखता है वह कैसे महादेव हो सकता है सच्चा महादेव वही है जिसने मोह महा पिशाच को पछाड़ कर अपने लिये परमात्म पद को प्राप्त किया है और संसार के अन्य भव्य जीवों को अपने उपदेश द्वारा मोक्ष मार्ग का प्रदर्शन किया है ।

महत्वादीश्वरत्वाच्च यो महेश्वरतां गतः ।
त्रैधातुकविनिर्मुक्तस्तं वन्दे परमेश्वरम् ॥२७॥

अन्वयार्थ—(यः) जो (महत्वात्) महान पने के कारण से (चईश्वरत्वात्) और ईश्वर होने के कारण से (महेश्वरतां गतः) महान ईश्वर पने को प्राप्त हुआ, (त्रै धातुक विनिर्मुक्तः) जो वात, पित्त, कफ तीन धातुओं से रहित है (तं परमेश्वरम्) उस परमेश्वर को (वन्दे) नमस्कार करता हूं ।

तृतीय ज्ञाननेत्रेण त्रैलोक्यं दर्पणायते ।
यस्यानवद्यचेष्टायां स त्रिलोचन उच्यते ॥२८॥

अन्वयार्थ—(यस्य) जिसकी (अनवद्यचेष्टायां) निर्दोष वीतरागता के भीतर (तृतीय ज्ञान नेत्रेण) केवल ज्ञान रूपी तीसरे नेत्र के द्वारा (त्रैलोक्यं) तीन लोक (दर्पणायते) दर्पण के समान झलकता है । (सः त्रिलोचनः) वही भगवान त्रिलोचन (उच्यते) कहे जाते हैं ।

येन दुःखार्णवे घोरे मग्नानां प्राणिनां दया ।
सौख्यमूलः कृतो धर्मः शंकरः परिकीर्तितः॥२९॥

अन्वयार्थ—(येन) जिस ने (घोर दुखार्णवे) भयानक दुःख रूप संसार समुद्र में (मग्नानां) डूबते हुवे (प्राणिनां) प्राणियों के लिये (दया सौख्य मूलः) दया और आनन्द

का मूल कारण (धर्मः) धर्म (कृतः) बताया है (शंकरः) वही शंकर (प्रकीर्तितः) कहा गया है।

भावार्थ०—अरहन्त भगवान ही सच्चे परमेश्वर हैं, वे त्रैलोक पूज्य हैं, उनकी आत्मा में, अन्तराय कर्म का अभाव हो जाने से अनन्त बल प्रगट हो रहा है। इन्द्र फणेन्द्र, नरेन्द्र चक्रवर्ति, गणधरादि नारायण बलदेव सब ही आपके चरणों में मस्तक झुकाते हैं। आप देवाधि देव, अठारह दोष रहित हैं, छयालीस गुण संयुक्त हैं, समव शरण की विभूति सहित हैं प्रभु को अनन्त चतुष्टय की प्राप्ति हुई है, इसी लिये अरहन्त भगवान सच्चे परमेश्वर हैं, केवल ज्ञान होने से पहले ही बारहवें क्षीण मोह गुण स्थान में प्रभु का शरीर परमौदारिक हो गया जिस में वायु पित्त कफ आदि धातुओं का कोई विकार नहीं रहा। कर्पूर तथा शुद्ध स्फटिक मणि की प्रतिमा के समान निर्मल शरीर तपश्चरण के बल से हो गया। प्रभु के अरहन्त पद का कुछ ऐसा प्रभाव है कि प्रत्येक प्राणी प्रभु को नमस्कार करता है उनके सामने कोई उद्धत रह नहीं सकता भगवान परम पूज्य, जन्म जरा मरण से रहित हैं, द्रव्य कर्म भाव कर्म तथा नो कर्म रूप विकार से रहित हैं। इसी से वे परमेश्वर हैं और भव्य जीवों द्वारा वन्दनीय हैं।

अरहन्त भगवान ही सच्चे त्रिलोचन हैं। शिव को त्रिलोचन कहते हैं। कहते हैं कि शिव के तपश्चरण के बल से उसके मस्तक में एक और ऐसी चक्षु प्रगट हो गई थी जिस से वह जगत के समस्त पदार्थों को देखते थे, अरहन्त भगवान ने चार घातीय कर्मों को नष्ट कर केवल ज्ञान रूपी परम लोचन को प्राप्त किया है। प्रभु के इस अतीन्द्रिय अनन्त ज्ञान में लोकालोक वर्त्ती समस्त ही पदार्थ अपने२ त्रिकालवर्त्ती अनन्त गुण पर्यायों सहित युगपत (एक साथ) प्रतिविम्बित हो रहे हैं। मोहनीय कर्म का सर्वथा अभाव हो जाने से प्रभु परम वीतरागी हैं, सर्वज्ञ वीतराग होने से जो भी उनका उपदेश है वह सत्यार्थ है, जगत के समस्त जीवों का बिना किसी प्रकार के भेद भाव के कल्याण करने वाला है। प्रभु का केवल ज्ञान समस्त पदार्थों को दर्पणवत् आचरण करने वाला है। यहां दर्पण के दृष्टांत में विशेषता यह है कि दर्पण में ऐसी अभिलाषा नहीं है कि मैं अमुक २ पदार्थों को प्रतिबिंबित करूं या जैसे लोहे की सुई चुम्बक पत्थर के पास खिंच कर स्वयम् ही जाती है, दर्पण अपने स्वरूप को छोड़ कर पदार्थों को प्रतिबिंबित करने के लिये उनके पास नहीं जाता है और न ही वे पदार्थ अपने निज स्वरूप को छोड़ कर उस दर्पण के अंदर प्रवेश कर जाते

हैं। अथवा जैसे कोई पुरुष को कहे कि हमारा अमुक कार्य कर दीजिये तैसे वे पदार्थ अपने प्रतिबिंबित होने के लिये दर्पण से कोई प्रार्थना या प्रेरणा भी नहीं करते। सहज स्वभाव से ही ऐसा कुछ सम्बन्ध है कि जैसा किसी पदार्थ का आकार होता है वह उस रूप ही दर्पण में प्रतिबिंवित होता है। उसके प्रतिबिंबित होने से दर्पण यह नहीं मानता कि यह पदार्थ मेरे लिये भला है उपकारी है, राग करने योग्य है, या यह पदार्थ मेरे लिये बुरा है, अपकारी है द्वेष करने योग्य है, दर्पण के लिये तो समस्त ही पदार्थ समान हैं। ठीक इसी प्रकार जैसे दर्पण में घट पटादिक अनेक पदार्थ प्रतिबिंबित होते हैं, प्रभु के वीतराग ज्ञान में समस्त जीवादिक पदार्थ प्रतिबिंबित होते हैं। प्रभु की वीतराग विज्ञानता की महिमा अद्भुत है, तीन भुवन में यह एक सार वस्तु है, मङ्गलमय है, मङ्गल करने वाली है। इसी के कारण प्रभु सर्वज्ञ कहलाते हैं इसी केवल ज्ञान रूप लोचन के द्वारा जगत के समस्त पदार्थों को साक्षात ऐसा देखते और जानते हैं जैसे हाथ की हथेली पर रखे हुये आंवले को पूर्ण रूप से देखते हैं। इस केवल ज्ञान रूपी लोचन के प्राप्त होने से प्रभु "त्रिलोचन" कहलाये अन्य कोई व्यक्ति त्रिलोचन नहीं हैं।

अरहंत प्रभु ही वास्तविक शंकर हैं, अन्य कोई व्यक्ति

शंकर नहीं है। प्रभु ने भयानक दुःख रूपी समुद्र में डूबते हुवे प्राणियों का दया व आनन्द का मूल ऐसा धर्म बता कर उनको आनन्द प्रदान किया है तथा उनका उद्धार किया है, इसलिये वे ही शंकर हैं, वे ही भव्य जीवों के परम मंगल के कर्त्ता हैं।

सब ही इस बात को भली प्रकार जानते हैं कि मूल (जड़) के बिना वृक्ष के स्कंध शाखा फूल फलादिक कहां से हो सकते हैं? अर्थात् नहीं हो सकते, उसी प्रकार जिनके धर्म नहीं उनके दया नहीं, और उनको सुख की प्राप्ति भी नहीं हो सकती है। धर्म उसे कहते हैं जो चतुर्गति में परिभ्रमण रूप दुख से आत्मा को छुड़ा कर आत्मीक अविनाशी अतीन्द्रिय मोक्ष सुख में धारण करे। यह धर्म किसी स्थान पर बिकता नहीं जो मोल ले आवे, किसी की खुशामद करने से चापलूसी करने से मिलता नहीं किसी की बख-शीश करने से आता नहीं, किसी की सेवा उपासना आदि द्वारा राज़ी करने से आता नहीं। धर्म किसी मंदिर देवालय गिरजा, मसजिद में, कहीं पर्वत, जल, अग्नि देव मूर्त्ति तीर्थादिकों में, नहीं रखा है, जो वहां जा कर कोई उठा लावे, केवल उपवास व्रत काय क्लेश आदि तपश्चरण द्वारा शरीरादि को क्षीण करने से भी नहीं मिलता, भगवान के मंदिर में, चैत्यालय में, चंवर छत्रादिक उपकरणों के

चढाने में, तथा बड़े २ मंडल पूजन विधान आदि कर देने से, ग्रहस्थ त्याग बन में स्मशान में, पर्वतादिकों, गुफाओं तथा खन्डहरों में निवास करने, तथा केवल परमेश्वर के नाम रटने मात्र से इस समीचीन धर्म की प्राप्ति नहीं होती। धर्म तो आत्मा का निज स्वभाव है, जो पर पदार्थों में आत्म बुद्धि को छोड़, अपने ज्ञाता दृष्टा रूप स्वभाव का श्रद्धान अनुभव तथा निज ज्ञायक स्वभाव में प्रवर्तन रूप जो आचारण सो धर्म है।

जिस समय आत्मा स्वयं उत्तम क्षमादि दश लक्षण धर्म रूप परिणमन करता है, तथा जिस समय आत्मा की निज परिणति रत्नत्रय रूप होती है तथा परम दया मय होती है, उस समय आत्मा स्वयं धर्म मय होता है। पर द्रव्य क्षेत्र कालादिक तो केवल निमित्त मात्र हैं। जिस समय यह आत्मा रागादिक विभाव परिणति को छोड़ आत्मस्थ तथा वीतराग रूप हुआ देखता है, तो मन्दिर, प्रतिमा, तीर्थ, दान, तप, जप आदि समस्त ही स्थान और क्रियाएँ धर्म रूप होती हैं, परन्तु यदि निज आत्मा ही निज स्व-भाव में स्थिर न हो कर इधर उधर डोलता फिरता है, और अपना आत्मा दश लक्षण धर्म रूप, रत्न त्रय धर्म रूप वीतराग रूप तथा सम्यक् ज्ञान रूप नहीं होता है तो तीर्थ मन्दिरादि स्थानों में और पूजन, जप, तप, आदि

क्रियाओं में कहीं भी धर्म नहीं होता। शुभ राग पुण्य बन्ध का कारण है, अशुभ राग द्वेष मोह आदि पाप बन्धन के कारण हैं। जहां सम्यक् श्रद्धान ज्ञान आचरण रूप धर्म है, वहां पाप बन्ध का अभाव होता है और बन्ध का अभाव होने पर ही उत्तम सुख होता है यही धर्म संसार परिभ्रमण से छुड़ा कर उत्तम मोक्ष सुख में धारण करने वाला है। धर्म की महिमा विचित्र है संसारी जीव सब ही सुख के इच्छुक होते हैं सुख का कारण धर्म है, जो धर्म का आदर नहीं करते उनको सुख की प्राप्ति कैसे हो सकती है बीज बिना धान्य की प्राप्ति कैसे हो सकती है। इस संसार में भी इन्द्र पना अहमिन्द्रपना तीर्थङ्कर पना चक्रवर्तीपना आदि जिन को भी प्राप्त हुवा है वह सब धर्म के प्रभाव से ही हुवा है उत्तम कुल, रूप, बल, ऐश्वर्य, राज्य संपदा आज्ञा सुपूत पुत्र सौभाग्यवती स्त्री, हितकारी मित्र, मन वांछित कार्य का साधन करने वाला सेवक, निरोगी शरीर उत्तम भोगोपभोग की सामग्री रहने के लिये सुन्दर२ महल सत्संगति क्षमा विनयादिक, मन्द कषायता, पंडितपना, कविपना, चतुरता, हस्तकला, पूज्यपना, लोकमान्यता, विख्यातता, दातारपना, भोगीपना, उदारता पूर्ण वीरता इत्यादि उत्तम सामग्री, उत्तम गुण, उत्तम बुद्धि, उत्तम प्रवृत्ति जो कुछ भी देखने में तथा सुनने में आता है सब

धर्म का ही प्रभाव है, धर्म के प्रसाद से विषम भी सुगम हो जाता है। महा उपद्रव भी दूर भागते हैं उद्यम रहित के भी लक्ष्मी का समागम हो जाता है। धर्म के प्रभाव से चेतन अचेतन कृत समस्त उपद्रव दूर हो जाते हैं।

भगवान अरहन्त द्वारा प्रतिपादित धर्म परम अहिंसा मय है। कषाय वश जीव के द्रव्य अथवा भाव प्राणों को हानि पहुंचाने को हिंसा कहते हैं, अर्थात् क्रोध मान, माया, लोभ वश या बे परवाही से बिना विचारे, बिना देखे भाले, उतावली घबराहट से किसी प्राणधारी के द्रव्य प्राण वा भाव प्राण को हानि पहुंचाने को हिंसा कहते हैं, जितने अधिक प्राणों को जितनी अधिक क्रूरता से जितनी अधिक हानि की जावेगी उतनी ही अधिक हिंसा का बंध होगा, हिंसा से निवृत्ति या बचे रहने का नाम अहिंसा है।

अहिंसा व्रत दो प्रकार का है, अहिंसा महाव्रत और अहिंसा अणुव्रत। सर्वथा पूर्णतया अहिंसा महाव्रत का पालन साधु तथा मुनिराज करते हैं। साधु पद से नीचे श्रावक पदवी में न्यूनाधिक अहिंसा धर्म का व्यवहार अपनी २ शक्ति के अनुसार हर कोई कर सकता है। श्रावक के अणुव्रत की अपेक्षा हिंसा विविध प्रकार की है। संकल्पी हिंसा का त्याग तो व्रतारम्भ होते ही होजाता है।

जान बूझ कर सोच समझ कर हिंसा करने के इरादे से, अणुव्रती श्रावक कदापि हिंसा नहीं करेगा किन्तु संकल्पी हिंसा के अतिरिक्त आरंभी उद्योगी तथा विरोधी हिंसा का त्याग श्रावक के यथा शक्ति होता है। श्रद्धानी श्रावक ग्रहस्थ के सब कार्य करता है, किन्तु यत्नाचार पूर्वक। उसके परिणाम सदा कोमल दयामय रहते हैं। अनिवार्य हिंसा हो जाने पर उसको हर्ष नहीं बल्कि खेद ही होता है, वह हिंसा को हेय ही जानता है। हिंसा के समस्त कारणों से बचने का भरसक प्रयत्न करता है छह काय के जीवों की रक्षा करता है, अपने परिणामों को कलुषित नहीं होने देता शान्त रहता है। दीन दुखी जीवों को देख उसके हृदय से करुणा श्रोत बह निकलता है उसकी भावना होती है कि वह स्वयम् सुखी रहे और अन्य सब जीवों का कष्ट मिटा कर उनको भी सुखी बनावे, कोई भी जीव दुःखी न हो। करुणा भावना के कारण ही परोपकारी जीव प्राणी मात्र के दुःख संकट मिटाने के लिये तत्पर रहते हैं। तीर्थंकर भगवान को भी प्राणी मात्र का कल्याण कराने की प्रेरणा करने वाली यही करुणा भावना है। जगत के जीवों को दुखी देख कर उनको दुख का स्वरूप ज्ञात होता है, तथा दुख उठाते हुये प्राणियों को देख कर उनको दुःख से छुड़ाने की तीव्र भावना होती है और इस भावना के

होने पर ये तीर्थंकर नाम कर्म का बन्ध किया करते हैं।

करुणा करने वाले प्राणी की दृष्टि बहुत विशाल होती है। वह "आत्मवत् सर्वभूतेषु" अपने समान जगत के समस्त प्राणियों को देखता है, दूसरों को दुखी देख कर उसका हृदय द्रवीभूत हो जाता है, उनको दुःख से किस प्रकार छुड़ावे ऐसा विचार बार २ उसके हृदय में उमड़ उमड़ कर आता है। वास्तव में करुणा एक विचित्र आशीर्वाद है यह लेने वाले तथा देने वाले दोनों को ही आनन्द देने वाला है। करुणा के बिना सारी करनी थोथी होती है, उसका कोई महत्व नहीं होता। दया पूर्वक परोपकार करना महान पुण्य है दूसरों को दुःख पहुंचाना पाप है। धर्मात्मा पुरुषों को जो मानसिक, शारीरिक अथवा आर्थिक सम्पत्ति पुण्योदय से प्राप्त होती है वो अन्य जीवों के उपकार के निमित्त ही होती है। करुणा बुद्धि का धारक दयावान मनुष्य दूसरों को दुखी संक्लेशित देख उनको दीन हीन निर्बल तथा असहाय जान अपने चित्त में अदया वृद्धि नहीं करता, वह कभी ऐसा अज्ञान रूप विचारा नहीं करता, कि मैं सम्पत्तियों का घर हूं, यह विचारा दीन विपत्तियों का घर है, मेरे समान नहीं हो सकता। वह विचारता है कि यह बेचारा निरपराध है अशुभ कर्मोदय से यह दुखी हो रहा है, तीव्र असाता

वेदनीय कर्म के उदय के निमित्त से यह निन्द्य स्थान बन रहा है, जो भेद भी संसारी जीवों की दशा में पाया जाता है वह सब कर्म कृत है, वास्तव में तो सब आत्मायें समान ही हैं, इस प्रकार एक अहिंसा धर्म का धारक दयालु पुरुष अपने पर आपत्ति हुवे या अन्य कारणों के मिलने पर अपने परिणामों में संक्लेशित नहीं होता, और न ही दूसरों को दीन दुःखी देख उनसे घृणा करता। वह तो स्वदया तथा पर दया दोनों के स्वरूप को भली भांति जान कर दया धर्म का पालन करता है।

इसी परम अहिंसा मय दया धर्म का उपदेश भव्य जीवों के कल्याण के निमित्त भगवान अरहन्त देव ने किया है। भगवान ने उस अहिंसा धर्म का पूर्णतया पालन अपने जीवन में आप किया है अनेक भव्य जीवों का कल्याण उनके कहे हुवे मार्ग पर चलने से हुवा है, हो रहा है और होता रहा है। वास्तव में अहिंसा परमात्म स्वरूप है जैसा कि कहा है।

अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्म परमं ।
न सातत्रारम्भो स्त्यणु रपि चयत्राश्रम विधौ ॥
ततस्तत्सिद्ध्यर्थं परम करुणो ग्रन्थ मुभयं ।
भवान्नेवान्याज्ञान्न च विकृत वेषोपधिरतः" ॥

अर्थात्—समस्त प्राणियों की रक्षा अर्थात् पूर्ण अहिंसा इस लोक में परम ब्रह्म स्वरूप कही गई है। जिस आश्रम के नियमों में ज़रा भी आरम्भ या व्यापार है वहां वह पूर्ण अहिंसा नहीं हो सकती है, परम दयावान भगवान ने आप दोनों ही अन्तरंग तथा बहिरंग परिग्रह को त्याग किया और विकारमय वस्त्राभूषण सहित, यथा जात् दिगम्बर वेष से विरोधी वेषों में आसक्त नहीं हुवे। प्रभु ने पूर्ण अहिंसा की ही सिद्धि के लिये निर्विकार बालकवत् निर्भय होकर परम नग्न दिगम्बर दीक्षा को धारण किया। जहां मूर्च्छा होती है वहां रागादिक विकार परिणाम होते हैं जहां रागादिक परिणाम होते हैं वहां वीतराग की हिंसा होती है! अहिंसा वीतरागमय आत्मा का स्वभाव है। जब आत्मा अपने निज स्वभाव में लीन होता है तब ही पूर्ण वीतरागता होती है तब ही पूर्ण अहिंसा होती है। भगवान ने इसी परम धर्म का पालन स्वयम् करके परमात्म पद को प्राप्त किया, दूसरे भव्य जीवों के सामने उस पूर्ण अहिंसा मय धर्म का आदर्श रखा ताकि वह भी उसका पालन कर स्वयम् मोक्ष के अविचल अविनाशी सुख को प्राप्त कर सकें। द्यान्त-राय जी ने स्वयम्भू स्तोत्र में भगवान महावीर की स्तुति करते हुवे कहा है :—

"भव सागर तैं जीव अपार, धर्म पोत में धरे निहार।
डूबत काढे दया विचार, वर्द्धमान वंदूं बहु बार॥

इस प्रकार अरहन्त भगवान हो सच्चे शंकर हैं उन्हों ने ही भयानक दुःख रूप संसार समुद्र में डूबते हुवे प्राणियों के लिये दया और आनन्द का मूल कारण धर्म प्रतिपादित किया है अन्य कोई भी व्यक्ति शंकर होने का अधिकारी नहीं हो सकता।

**रौद्राणि कर्म जालानि शुक्ल ध्यानोग्र वन्हिना।**
**दग्धानि येन रुद्रेण तंतु रुद्रं नमाम्यहम् ॥३०॥**

अन्व० (येन रुद्रेण) जिस रुद्र ने (रौद्राणि कर्म जालानि) भयानक कर्म जालों को (शुक्ल ध्यानोग्र वन्हिना) शुक्ल ध्यान की तीव्र अग्नि द्वारा (दग्धानि) जला दिया है (तंतु रुद्रं) उसी रुद्र भगवान को (अहं नमामि) मैं नमस्कार करता हूं।

**विश्वं हि द्रव्य पर्यायं विश्वं त्रैलोक्यगोचरम्।**
**व्याप्तं ज्ञानत्विषा येन स विष्णुर्व्यापको जगत॥**

अन्व० (येन) जिसने ज्ञानत्विषा) ज्ञान रूपी ज्योति के द्वारा (त्रैलोक्य गोचरम) तीन लोक संवन्धी (विश्वं हि-द्रव्य पर्याय) समस्त ही द्रव्य पर्याप रूप (विश्वं) जगत को (व्याप्तं) किया है (सः जगत व्यापक विष्णुः) वह

जगत में व्यापक विष्णु भगवान हैं।

**वासवाद्यै सुरैः सर्वैः यो ऽर्च्यते मेरुमस्तके।**
**प्राप्तवान् पंचकल्याणं वासुदेवस्ततो हिसः॥३२॥**

अन्वयार्थ—(यः) जो (मेरु मस्तके) मेरु पर्वत के मस्तक पर (सर्वैःवासवाद्यै सुरैः) सर्व ही इन्द्रादिक देवों से(अर्च्यते) पूजा गया है (पंच कल्याणक प्राप्तवान और जिसने पंच कल्याणक की महिमा प्राप्त की है (ततः) इसी लिये (सः हि वासुदेवोः) वह अरहंत ही नियम से वासुदेव हैं।

भावार्थ—अनादि काल से संसारी जीव पूर्व वद्ध कर्मोदय के निमित्त से मोह और मोह के प्रभाव से नवीन नवीन कर्म बंध करता रहता है। बन्ध के कारण ही यह जीव संसार में भ्रमण कर रहा है। अरहन्त भगवान ने इस कर्म चक्र को दुखदायी जान संसार और इन्द्रिय विषय भोगों को त्याग किया, दिगम्बर दीक्षा धारण की। क्षपक श्रेणी चढ ध्यानाग्नि को प्रज्वलित किया, प्रथम प्रथक्त्व वितर्क विचार शुक्ल ध्यान के बल से मोहनीय कर्म का नाश किया, फिर एकत्व वितर्क अविचार नाम दूसरे शुक्ल ध्यान की अग्नि से ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्म का नाश किया इस तरह प्रभु अरहन्त परमात्मा हुवे, फिर अयोग गुण स्थान में व्युत्पात् क्रिया निवृत्ति लक्षण चौथे शुक्ल ध्यान के द्वारा शेष

चार अघातिया कर्मों को भी भस्म कर डाला। जिन आठ कर्मों का अनादिकाल से प्रवाह रूप समबन्ध चला आ रहा था और जिनका अन्त करना अति कठिन था उन सब कर्मों को प्रभु ने आत्म ध्यान की अग्नि से जला डाला, इस प्रकार प्रभु सर्व कर्मों से रहित हो कर सिद्ध परमात्मा हो गये। अरहन्त भगवान ही शुक्ल ध्यान को ध्याय कर आठों ही कर्मों का चय कर मोक्ष अवस्था को प्राप्त हुवे, इस लिये वे ही सच्चे रुद्र हैं उनके अतिरिक्त और कोई रुद्र नहीं है।

चार घातीय कर्मों का नाश कर देने पर प्रभु के पूर्ण सर्वोत्कृष्ट असहाय प्रत्यक्ष आत्मीक स्वभाव रूप केवल ज्ञान उत्पन्न हुवा। केवल ज्ञान के द्वारा त्रैलोक्य के व अलोक के समस्त पदार्थों के द्रव्य गुण पदार्थों को एक ही समय जान लिया, उनका ज्ञान सब में फैल गया। केवलज्ञानी परमात्मा ज्ञेय ज्ञायक संबंध के कारण जगत के समस्त पदार्थों को देखते व जानते हैं तो भी उन में तन्मय नहीं होते। परमात्मा समस्त पदार्थों का ज्ञाता दृष्टा होते हुवे भी कभी उन पदार्थ रूप नहीं परिणमन करता और न ही ज्ञेय पदार्थ ज्ञान रूप होते हैं। आत्मा अपने ज्ञान स्वभाव को छोड़ कर पर रूप नहीं होता है, ज्ञान में सर्व ज्ञेय स्वयं झलकते हैं, यह ज्ञान का

स्वभाव दर्पणवत् प्रकाशमान है। दर्पण में जैसे प्रकाश्य पदार्थ घुस नहीं जाते वैसे आत्मा में ज्ञेय पदार्थ प्रवेश नहीं कर जाते। न तो आत्मा विश्व रूप हो कर अन्य द्रव्यों की सत्ता मेट कर आप ही जड़ चेतन रूप होता है और न ऐसा कि आत्मा का ज्ञान गुण ज्ञेय को प्रकाशने से शून्य हो जावे, यह मानना भी मिथ्या है कि ज्ञान में ज्ञेय का झलकना है, सो ज्ञान में अशुद्धता है। यदि ज्ञान में ज्ञेय न झलके तो ज्ञान ज्ञान ही न रहे जड़ हो जावे, ऐसा हो नहीं सकता, रागद्वेषादि विभाव भावों को मिटाना चाहिये। वीतरागता से यदि कोई भी जीव कितने भी ज्ञेय पदार्थों को जानता है इस में आत्मा की तथा उसके ज्ञान गुण की कुछ भी क्षति नहीं है। इस प्रकार सर्वज्ञ होने की अपेक्षा अरहंत भगवान ही वास्तविक विष्णु है, अन्य कोई व्यक्ति विष्णु नहीं है। क्योंकि, ज्ञान की अपेक्षा वे जगत के समस्त पदार्थों में व्यापक हैं, प्रदेशों की अपेक्षा से नहीं हैं, अरहन्त का आत्मा शरीर मात्र प्रदेशों में ही रहता है। ज्ञान गुण उसी आत्मा में व्यापक है ज्ञान आत्मा का छोड़ कर बाहर नहीं जा सकता, किसी भी परमात्म को जगत का ज्ञान करने के लिये जगत में फैलने की ज़रूरत नहीं है, जैसे चक्षु पदार्थों में स्वयम् न जाकर दूर से ही पदार्थों को देख लेती है वैसे ही ज्ञान पदार्थों में न

जाकर उनको जान लेता है। इस लिये कोई सर्व व्यापी विष्णु सच्चा विष्णु नहीं हो सकता। अरहन्त ही सच्चे विष्णु हैं।

अरहंत परमेष्ठी ही वास्तविक वासुदेव हैं। जगत में अन्य कोई ऐसा पुण्यात्मा व्यक्ति नहीं जिसके गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान व निर्माण कल्याणकों में इन्द्रादि देवों ने महान उत्सव किये हों केवल तीर्थंकर भगवान ही ऐसे होते हैं जिनके पांच कल्याणक में देवादिक उत्सव मनाते हैं। बड़े २ गणधर देव आदि साधु, देवों के इन्द्र, मनुष्यों के स्वामी चक्रवर्ती आदि भगवान को पूज्यनीय समझ कर पूजते हैं।

जब भगवान का गर्भ कल्याणक होता है तो गर्भ में आने से छः महीने पहिले इन्द्र द्वारा प्रेरित धनेन्द्र जिस राजा की रानी के गर्भ में भगवान आते हैं उसके नगर की शोभा करते हैं। रत्नमयी सुनहरी महल रचता है। नगर में कोट खाई दरवाजे सुन्दर बन उपवन की रचना करता है। ऐसे नर नारी नगर में बसाता है जिनकी आकृति तथा जिनके वस्त्राभूषण सुन्दर हों। नित प्रति राज महल में रत्नों की वर्षा होने लगती है। भगवान के माता के गर्भ में आते ही माता को सोलह स्वप्न आते हैं। रुचक द्वीप की निवासिनी देवांगनाएँ माता की नित

प्रति सेवा करती हैं। इस प्रकार नौ महीने व्यतीत हो जाने पर तीन ज्ञान तथा दश अतिशय सहित जन्म होता है। तीन लोक में क्षोभ हो जाता है। देवों के बिना बजाए बाजे बजते हैं। इन्द्रासन कम्पायमान होता है। इससे इन्द्र प्रभु का जन्म जान कर स्वर्ग से ऐरावत हाथी पर सवार होकर आता है। सब चार प्रकार के देव देवी एकत्रित होकर आते हैं। इन्द्राणी माता के पास जाकर गुप्त रूप से प्रभु को ले आती है। इन्द्र हर्ष के मारे हजार नेत्रों द्वारा स्वामी को देखता है, सौधर्म इन्द्र प्रभु को अपनी गोद में ले ऐरावत हाथी पर चढ़ मेरु पर्वत की ओर चलता है। ईशान इन्द्र छत्र रखता है। सन्तकुमार महेन्द्र, इन्द्र चँवर ढारते हैं। मेरु पर्वत पाँडुक बन की पांडुक शिला पर सिंहासन के ऊपर प्रभु को स्थापित करते हैं। सारे देव क्षीर समुद्र से १००८ कलशों में जल लाकर देव देवाँगनाओं के गीत नृत्य होते हुए वादित्र बजते हुए बड़े उत्साह पूर्वक प्रभु के मस्तक पर ढार जन्म कल्याणक का अभिषेक करते हैं। फिर शृंगार वस्त्राभूषण पहिना कर माता के महल में लाकर माता को सौंप देते हैं। इन्द्रादिक देव अपने २ स्थान को चले जाते हैं। कुबेर सेवा में रहता है। फिर भगवान कुमार अवस्था, तथा राज अवस्था को भोगते हैं। मन वाँछित भोग भोगने के

बाद स्वामी कुछ वैराग्य का कारण पाकर संसार शरीर भोगों से विरक्त होते हैं। तब लौकांतिक देव आकर वैराग्य के बढाने वाली प्रभु की स्तुति करते हैं इन्द्र आकर तप कल्याणक करता है। पालकी में बैठा कर महान उत्सव के साथ इन्द्रादिक देव स्वामी को दीक्षा बन में ले जाते हैं। वहां प्रभु पवित्र शिला पर विराजमान हो पंचमुष्टि से केशलोंच करते हैं। "नमः सिद्धेभ्यः" कह कर पंच महाव्रत धारण करते हैं। समस्त परिग्रह का त्याग कर परम दिगम्बर मुद्रा को धारण कर आत्मध्यान करते हैं। तत्काल भगवान को मनः पर्याय ज्ञान की प्राप्ति होती है। कुछ दिन तक तपश्चरण करने के पश्चात तपस्या के बल से चारों घातिया कर्म की सैंतालीस (४७) प्रकृति और शेष अघातिया कर्मों की सोलह प्रकृति इस प्रकार त्रेसठ प्रकृतियों का सत्ता में से नाश कर केवल ज्ञान प्राप्त कर अनंत चतुष्टय पा क्षुधादिक अठारह दोषों से रहित होकर अरहंत परमात्मा होते हैं। तब इन्द्र आकर प्रभु के समवशरण की रचना करता है। शास्त्रोक्त अनेक शोभा सहित मणि, सुवर्णमयी कोट खाई वेदी, चारों दिशाओं में चार दरवाज़े, मानस्थंभ, नाटयशाला, बन आदि अनेक रचनाएं करता है। ठीक मध्म में, सभा मंडप में बारह सभा होती हैं। जिन में मुनि आर्यिका,

श्रावक, श्राविका, देव, देवी, तिर्यंच बैठते हैं। प्रभु के अनेक अतिशय प्रगट होते हैं। सभा मंडप के बीच में तीन पीठ पर गंध कुटी के बीच में सिंहासन पर व कमलासन अन्तरिक्ष प्रभु विराजमान होते हैं। अष्ट प्रातिहार्य युक्त होते हैं। प्रभु की वाणी खिरती है। जिसको सुनकर गणधर देव द्वादशांग, रूप रचना करते हैं। इस प्रकार केवल ज्ञान कल्याणक का उत्सव इन्द्र करता है।

जिस समय प्रभु का विहार होता है इन्द्रादि देव बड़ा उत्सव करते हैं। कुछ काल व्यतीत होने पर जब आयु के दिन थोड़े रह जाते हैं तब योगों का निरोध हो जाता है और अघातिया कर्मों का नाश कर प्रभु परम निर्वाण पद को प्राप्त होते हैं। तब पीछे शरीर का संस्कार कर इन्द्र आदिक उत्सव सहित निर्वाण कल्याणक मनाते हैं। इस प्रकार तीर्थंकर भगवान पंच कल्याणक की पूजा पा कर अरहंत कहला कर निर्वाण पद को प्राप्त होते हैं जो इस प्रकार इन्द्रादि देवों द्वारा पूज्यनीक हैं वह ही सच्चे वासुदेव हैं अन्य और कई व्यक्ति वासुदेव नहीं हो सकता।

**अनन्त दर्शनं ज्ञानं कर्मारिक्षय कारणम्।**
**यस्यानन्तसुखं वीर्यं सोऽनन्तो अनन्त सद्गुणः॥ २३**

अन्व०—(यस्य) जिस भगवान के (कर्मारिक्षय कार-

णम्) कर्म शत्रुओं के नाश से उत्पन्न होने वाले (अनन्त-दर्शनं ज्ञानं) अनन्त दर्शन और अनन्त ज्ञान (अनन्तसुखं वीर्यं) अनंत सुख, अनन्त वीर्य प्रगट हुवे (अनंतसद्गुणः) ऐसे ही और अनन्त गुणों का धारी जो है (स अनन्तः) वही अनन्त है, अर्थात अनन्त गुणों से विभूषित है।

**सर्वोत्तमगुणैर्युक्तं प्राप्तं सर्वोत्तमं पदम् ।**
**सर्वभूतहिता यस्मात्तेनासौ पुरुषोत्तमः॥३४॥**

अन्व०—(यस्मात्) क्यों कि (तेन) उस अरहन्त ने (सर्वोत्तम् गुणै युक्त) सब उत्तम गुणों से विभूषित (सर्वोत्तमं-पदं) सब से उत्तम परमात्म पद (प्राप्तं) प्राप्त कर लिया है (सर्वभूत हितः) जो सब प्राणियों का हितकारी है (असौः पुरुषोत्तमः) वही पुरुषोत्तम है।

**प्राणिनां हितवेदोक्ता नैष्ठिकः संग वर्जितः ।**
**सर्व भाषश्चतुर्वक्त्रो ब्रह्मासौ काम वर्जितः॥३५॥**

अन्व०—(प्राणिनां हित वेदोक्ता) प्राणियों के हित के लिये यथार्थ आगम का उपदेश दाता (नैष्ठिकः) पूर्ण ब्रह्मचारी (संग वर्जितः) सर्व परिग्रह रहित (सर्व भाषा) जिसकी वाणी सर्व भाषा रूप परिणमन कर जाती है (चतुर्वक्त्रः) समवसरण में जिसके चार मुख दिखाई देते हैं (असौ काम वर्जितः ब्रह्मा) वही अरहन्त काम वासना

से रहित सच्चा ब्रह्मा है ।

**यस्य वाक्यामृतं पीत्वा भव्या मुक्तिमुपागताः ।**
**दत्तं येनाभयं दानं सत्वानां स पितामह ॥३६॥**

अन्व०—(भव्या) भव्य जीव (यस्य वाक्यामृतं पीत्वा) जिसके बचन रूपी अमृत को पी कर (मुक्तिम् उपागतः) मुक्ति को प्राप्त हुवे हैं, (येन) जिसने (सत्वानां) सर्व प्राणियों को (अभयं दानं दत्तं) अभय दान दिया है (सः पिता महः) वही अरहन्त सच्चा पितामह है ।

भावार्थ—प्रभु ने चार घातिया कर्मों का नाश कर के अनन्त चतुष्टय की प्राप्ती की, प्रभु आत्मा में अनन्त गुण हैं, स्वामी ने अनन्त नाम धारी मिथ्यात्व को जीत लिया, मिथ्यात्व के जीतने पर रागद्वेष मोह आदि परिणामों का नाश किया, इनका विध्वंश होने पर स्वामी की आत्मा में अनन्त स्वाभाविक गुणों का विकाश हुवा इसी कारण प्रभु अनन्त कहलाये ।

अरहन्त भगवान ही पुरुषोत्तम हैं, प्रभु ने साधारण मनुष्यों की प्रकृति को उल्लंघन कर डाला है, आप परमात्मा हो गये । संसारी मनुष्यों के इच्छा वेदना लगी हुई है, वे अल्पज्ञ हैं कषाय ग्रसित हैं स्वामी में इन दोषों में से कोई भी दोष लेश मात्र नहीं रहा, प्रभु पूर्ण केवल

ज्ञानी हैं, अनन्त बली हैं, अतीन्द्रिय ज्ञान के धारी हैं, सर्वथा इच्छा रहित हैं, पूर्ण वीतरागी हैं, योगीश्वर हैं, परमौदारीक शरीर में विराजमान, अठारह दोष रहित, छयालीस गुण संयुक्त हैं, देवों कर पूज्य हैं। आप साक्षात् मोक्ष रूप हैं, जन्म जरा मरण की बाधा से सर्वथा रहित हैं, देवाधिदेव हैं। इसी कारण अरहन्त भगवान ही पुरुषोत्तम हैं, कहां आप और कहां साधारण मनुष्य। गणधर भगवान भी पूर्ण रूप से आपका गुणानुवाद नहीं कर सकते कहा है:—

ज्ञान जहाज़ बैठ गणधर से गुणपयोधि जिस नाहिं तिरै है,
अमरसमूह आन अवनीसों घस घस शीस प्रणाम करैं हैं।

स्वामी की परमात्म अवस्था अपूर्व ही स्वभाव को रखने वाली है इसी कारण स्वामी पुरुषोत्तम हैं।

प्रभु ने भव्य जीवों के कल्याण के निमित्त आगम का उपदेश किया, अखंड पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन किया अन्तरङ्ग वहिरंग सर्व प्रकार के परिग्रह का सर्वथा अभाव किया, प्रभु जब समवसरण में गंध कुटी के बीच कमलासन सिंहासन पर अन्तरीक्ष विराजमान होते हैं तो अतिशय से चारों दिशाओं में चार मुख स्वामी के भव्य जीवों को दिखाई पड़ते हैं इसी कारण अरहन्त भगवान काम विजयी सच्चे ब्रह्मा हैं अन्य कोई व्यक्ति ब्रह्मा नहीं है।

भगवान की वाणी प्राणी मात्र को सुख देने वाली होती है, जैसे अमृत के पीने से प्राणियों को सन्तोष होता है, वैसा सन्तोष भगवान की वाणी सुनने से होता है, श्रोताओं का हृदयकमल प्रफुल्लित हो जाता है, वे परमोपकारी उपदेश का लाभ कर अपने हित का सच्चा मार्ग पा लेते हैं वाणी के प्रसाद से अनेक भव्य जीव अपना कल्याण कर भव समुद्र से पार हुवे हैं, परम निर्वाण पद को प्राप्त हुवे हैं। प्रभु ने समस्त जीव राशी को अभय दान दिया, अपने जीवन में छह काय के जीवों की पूर्ण रक्षा की, परम अहिंसा महा व्रत का पालन किया स्वयं साक्षात् अहिंसामय हो गये। अहिंसा वास्तव में वीतराग आत्मा का स्वभाव है, जब आत्मा अपने निज स्वरूपमें तल्लीन होता है तब ही पूर्ण वीतरागता होती है। तब ही पूर्ण अहिंसा होती है। प्रभु ने परम वीतरागता को प्राप्त किया है, वे सर्व जीवों के सच्चे रक्षक हैं अभय दान दातार हैं परम गुरु हैं इस लिये वे ही सच्चे पितामह हैं अन्य कोई व्यक्ति पितामह नहीं है।

यस्य पाणणवमासानि रत्नवृष्टिः प्रवार्षिता।
शक्रेण भक्तियुक्तेन रत्नगर्भस्ततो हि सः॥३७॥

अन्वयार्थ—(शक्रेण) इन्द्र ने (यस्य) जिस तीर्थंकर के गर्भावतरण के समय में (पटनव मासानि) पंद्रह महीने

तक (रत्न वृष्टिः) रत्नों की वृष्टि (भक्तियुक्तेन) भक्ति पूर्वक (प्रवार्षिताः) वर्षाई थी (ततः) इसलिये (सः हि रत्नगर्भ) वह अरहन्त ही निश्चय से रत्नगर्भ हैं।

**मतिश्रुतावधिज्ञानं सहजं यस्य बोधनम् ।**
**मोक्षमार्गे स्वयं बुद्धस्तेनासौ बुद्धसंज्ञितः ॥३८॥**

अन्व०—(यस्य) जिसके जन्म समय (सहजम्) साथ ही जन्मने वाले ( मतिश्रुतावधिज्ञानम् ) मति, श्रुत, अवधिज्ञान (बोधनं) जाग्रत हुवे थे (स्वयं) अपने आप ही बिना उपदेश के (मोक्षमार्गे) मोक्ष के मार्ग में (बुद्धः) ज्ञानी हो गये (तेन) इस कारण से (असौ बुद्धसंज्ञितः) वही अरहन्त भगवान ही सच्चे बुद्ध हैं ।

**केवलज्ञानबोधेन बुद्धवान् स जगत्रयम् ।**
**अनन्तज्ञानसंकीर्णं तं तु बुद्धं नमाम्यहम् ॥३९॥**

अन्वयार्थ—(सः) उस अरहंत ने (जगत्रयम् ) तीनों जगत के प्राणियों को (केवलज्ञानबोधेन) केवल ज्ञान के द्वारा उपदेश देकर (बुद्धवान) ज्ञान प्रदान किया (अनन्त ज्ञान संकीर्णं) अनंत ज्ञान से भरपूर (तं तु बुद्धं) उस ही बुद्ध को (अहं नमामि) मैं नमस्कार करता हूं ।

**सर्वार्थभाषया सम्यक् सर्वक्लेशप्रघातिनाम् ।**
**सत्वानां बोधको यस्तु बोधिसत्वस्ततो हि सः॥४०**

अन्वयार्थ—(यःतु) जो कोई (सर्व क्लेशप्रघातिनाम्) सर्व क्लेशों के दूर करने के उत्सुक (सत्वानाम्) प्राणियों को (सर्वार्थभाषया) सर्वार्थ से पूर्ण और सर्वभाषामयी दिव्य-ध्वनि द्वारा (सम्यक् बोधकः) भले प्रकार ज्ञान देता हुवा (ततः) इसलिये (सः हि बोधसत्वः) वह ही निश्चय से बोध सत्व भगवान है।

भावार्थ—तीर्थंकर भगवान ने पूर्व जन्म में दर्शन विशुद्धि आदि षोड़श कारण भावनाओं को भाय कर अद्भुत पुण्य उपार्जन किया, उस पुण्य के प्रभाव से ही भगवान तीर्थंकर हुवे। भगवान के माता के गर्भ में आने से छह महीने पहले इन्द्र की अज्ञानुसार कुबेर बारह योजन लंबी नौ योजन चोड़ी रत्नमयी नगरी की रचना करता है, उसके ठीक बीच में भगवान के माता पिता के रहने के लिये एक रत्नमई महल बनाता है। भगवान के माता के गर्भ में आने से छह महीने पहले सवेरे, दोपहर और सन्ध्या समय आकाश से साढ़े तीन करोड़ रत्नों की वर्षा प्रत्येक समय कुबेर करता है। यह रत्नों की वर्षा पंद्रह महीने तक अर्थात् भगवान के जन्म काल तक होती है। इसी लिये तीर्थंकर भगवान ही सच्चे रत्नगर्भ हैं, अन्य कोई व्यक्ति रत्नगर्भ नहीं है भरत तथा ऐरावत क्षेत्रों में गर्भ कल्याणक के समय से पंद्रह महीने तक रत्न वर्षा

सब ही तीर्थंकरों के पिता के राजमहल में नियम पूर्वक हुवा करती है। विदेह क्षेत्रों में किसी के होती है किसी के नहीं।

तीर्थंकर नामा कर्म प्रकृति के उदय से तीर्थंकर भगवान के मति श्रुति अवधि तीन ज्ञान जन्म से ही होते हैं। जब भगवान वैराग्य में आते हैं तो दीक्षा लेते समय वे किसी साधु आचार्य को नमस्कार नहीं करते, अरहंत परमेष्ठी को भी नमस्कार नहीं करते वे गृहस्थ अवस्था में जिन प्रतिमा दर्शन मुनि भक्ति आदि नहीं करते क्योंकि वे प्रगाढ़ रूप से आत्मा में तल्लीन रहते हैं। केवल सिद्ध परमेष्ठी को नमस्कार कर परम दिगम्बर मुद्रा को धारण करते हैं। कुछ समय के पश्चात तपश्चरण के बल से तथा शुक्ल ध्यानके प्रभाव से क्षपक श्रेणी में घातिया कर्मों को नाश कर केवल ज्ञान को प्राप्त होते हैं। उस समय अर-हन्तपना प्रकट होता है। केवल ज्ञान रूपी नेत्र से तीन काल सम्बन्धी जगत के समस्त द्रव्यों की अनन्तानंत पर्या-यों सहित अनुक्रम से एक समय में युगपत् समस्त द्रव्यों को जानते हैं। इसी कारण भगवान अरहन्त ही सच्चे भगवान बुद्ध हैं और कोई बुद्ध यथार्थ बुद्ध नहीं हैं।

केवल ज्ञान के द्वारा ही भगवान ने मिथ्यात्व तथा अज्ञान का नाश करने वाला, पदार्थों के यथार्थ स्वरूप

का बताने वाला दिव्य ध्वनि से भव्य जीवों को उपदेश दिया, उससे मुमुक्षु जीवों को सच्चे मोक्षमार्ग की प्राप्ति होती है, इसी कारण सच्चे भगवान बुद्ध अरहंत देव ही हैं। उनको ही आचार्यवर नमस्कार करते हैं।

अरहंत भगवान ही सच्चे बोधिसत्व भगवान हैं, अरहंत भगवान की दिव्य ध्वनि खिरती है। इस दिव्य ध्वनि की ऐसी महिमा है कि यह जगत के समस्त जीवों का परम उपकार करने वाली, मोह अंधकार का नाश करने वाली होती है। सब ही जीव अपनी अपनी भाषा में शब्द अर्थ को ग्रहण कर लेते हैं, किसी पदार्थ के संबन्ध में श्रोता जनों को कोई संशय नहीं रहता है, स्वर्ग मोक्ष के मार्ग को साक्षात् प्रगट करने वाली है, समस्त पदार्थों का ज्ञान कराने वाली है। इसी दृष्टि से अरहंत भगवान ही निश्चय से बोधिसत्त्व भगवान हैं। अन्य कोई बुद्ध यथार्थ बुद्ध नहीं हैं।

**सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तं स्थानमात्मस्वभावजम्।**
**प्राप्तं परमनिर्वाणं येनासौ सुगतः स्मृतः॥४१॥**

अन्वयार्थ—(येन) जिसने (सर्वद्वन्द्व विनिर्मुक्तं) सर्व संसारीक झगड़ों से रहित (आत्म स्वभावजम्) आत्म स्वभाव से उत्पन्न (परम निर्वाणं स्थानं) उत्कृष्ट निर्वाण

स्थान को (प्राप्तं) पालिया है (असौ सुगतः स्मृतः) वह अरहंत सच्चे सुगत कहे गये हैं।

**सुप्रभातं सदा यस्य केवलज्ञानरश्मिना।**
**लोकालोकप्रकाशेन सोऽस्तु भव्यदिवाकरः ॥४२**

अन्वयार्थ—(यस्य) जिस अरहंत भगवान के भीतर (लोकालोक प्रकाशेन) लोक और अलोक को प्रकाशित करने वाली (केवल ज्ञान रश्मिना) केवल ज्ञान रूपी किरण से (सदा सुप्रभातं) सदा ही प्रभात बना रहता है (सो भव्य दिवाकरोऽस्तु) वही अरहंत भगवान भव्य दिवाकर अर्थात् सूर्य है भव्य सूर्य भगवान हैं।

**जन्ममृत्युजरारोगाः प्रदग्धा ध्यानवन्हिना।**
**यस्यात्मज्योतिषां राशेः सोऽस्तु वैश्वानरः स्फुटम्।**

अन्वयार्थ—(यस्य) जिस अरहंत की (आत्मज्योतिषां राशेः) आत्मज्योति की राशी (समूह) से उत्पन्न (ध्यान-वन्हिना) ध्यान रूपी अग्नि के द्वारा (जन्म मृत्यु जरारोगाः) जन्म मरण जरारूपी रोग (प्रदग्धा) जला दिये गये हैं (सः वैश्वानर स्फुटम् अस्तु) वही अरहंत भगवान सच्चे अग्नि देवता हैं।

**एवमन्वर्थनामानि सर्वज्ञं सर्वलोचनम्।**
**ईदृगन्यानि नामानि वेधोऽन्यत्र विचक्षणैः॥४४॥**

अन्वयार्थ—(सर्वज्ञं) सर्वज्ञ (सर्व लोचनम्) सर्वदर्शी (एवं) इस प्रकार (अन्वर्थ नामानि) अर्थ पूर्ण अरहंत के अनेक नाम हैं (अत्र) इस लोक में (विचक्षणैः) विद्वान् पुरुषों को (ईदृगन्यानि नामानि) इस तरह से दूसरे नाम (वेद्यानि) जानने योग्य हैं।

भावार्थ—अनादि काल से मिथ्यात्व तथा अज्ञान के कारण संसारी जीव नाना प्रकार के संकल्प विकल्प करता रहता है। पुण्य के उदय से यह जीव उत्तम शरीर वाला, सुन्दर, धनवान, पुत्रवान, ऐश्वर्य शाली आयुष्मान आदि अनेक प्रकार के रूप धारण करता है, यही जीव पापकर्म के उदय होने पर विपरीत रूप धारण कर कंगला सारिखा दीख पड़ता है। पुण्योदय से जीव सुखी प्रतीत होता है और एक बार ही किसी कष्ट या मानसिक चिंता के उपस्थित हो जाने पर अत्यन्त दुःखी जान पड़ता है। कभी रोता है, कभी हंसता है। कभी पागल की तरह रुदन करने लगता है तो कभी काम रसिक बन कर काम क्रीड़ा किया करता है, कभी संपूर्ण वैभव शाली होता है तो कभी धनहीन हो नंगे पावों फटे पुराने चीथड़े पहने दीन रङ्क देखा जाता है, कभी निस्तेज शक्ति हीन हो जाता है। कभी महान् बलवान हो जाता है। ऐसे २ अनेक रूप विचित्र कर्मों के वशीभूत होकर यह जीव धारण करता है। संसार

रूप रंग भूमि में नाना प्रकार के स्वांग रच स्वयम् हर्ष मानता है, तथा दूसरों को रंजायमान करता है। कभी किसी पदार्थ से राग करता है, कभी किसी से द्वेष करता है। कभी इन्द्रि भोगों के भोगने को इच्छा करता है, उनके इच्छानुकूल विषय भोग मिलने पर इन्द्रियों को उनके भोग में जोड़ देता है और अपने आप को धन्य मानता है, कभी मन वांछित भोगपदार्थों के न मिलने पर व्याकुल चित्त हो बार २ अपने को धिक्कारता है। कभी विचारता है कि जैसे भोग मैंने भोगे हैं, ऐसे और किसी ने भी नहीं भोगे। कभी इष्ट पदार्थ के वियोग हो जाने पर रुदन करता है, तो कभी उसके प्राप्त हो जाने पर खुशियां मनाता है। कभी भोग विषयों में सहायक मित्रों से प्रीति, कभी उनकी प्राप्ति में बाधक शत्रुओं से द्वेष करता है, उनके नाश का उपाय सोचता है इस प्रकार एक संसारी जीव सदैव मन वचन काय के व्यापार में मग्न होकर, विषय कषायों के आश्रित हो जाता है और क्षण भर भी शान्ति नहीं धारण करता कषायादि में प्रवृत्ति करते समय वह लीन हो जाता है। और मानो वास्तव में ही वह स्वयं कषाय मय हो ऐसा जान पड़ता है और उसी दशा में सुख मानता है, किंतु ऐसी दशा में सुख कहां ? सुख तो निवृत्ति विना हो नहीं सकता। जहां दुख रूपी तलवार सिर पर लटक रही हो

वहाँ सुख कैसा।

जब कभी जीव को सम्यक् दर्शन की प्राप्ति होती है और वह संसार तथा इन्द्रिय भोगों से विरक्त हो सर्व परिग्रह का त्याग कर दिगम्बर दीक्षा धारण कर शुद्ध नय के द्वारा शुद्ध स्वभाव का मनन करता है, मनन का अभ्यास करते२ मनन के द्वारा यकायक उपयोग अपने आत्मा में स्थिर हो जाता है, तब वहाँ न इन्द्रियों के विषयों का ध्यान रहता है न मन के भीतर कोई संकल्प विकल्प रहता है उस समय इन्द्रियें अपने आकार को रखती हुई भी भाव इन्द्रिय के बिना व्यर्थ हो जाती हैं, द्रव्य मन रहने पर भी भाव मन का कार्य बन्द हो जाता है, केवल उपयोग में आत्मा ही आत्मा रह जाता है। आत्मा आत्मा में ऐसा थिर होजाता है मानो साधक साध्य का ध्याता ध्येय का ज्ञान ज्ञेय का सब द्वैतभाव जाता रहता है एक अद्वैत भाव होजाता है जो मन वचन से अगोचर है। वास्तव में जब बारम्बार भेद ज्ञान अंतरङ्ग में उछलता है, दीर्घ काल तक आत्मा को पर संयोग से सर्वथा भिन्न मनन किया जाता है तब शुद्ध आत्मा के तत्व का लाभ होजाता है तब राग द्वेष का ग्राम भस्म होजाता है उसी से नवीन कर्मों का निरोध होता है तब ज्ञान अपने ज्ञान रूपी आत्मा में निश्चल हो जाता है। उत्कृष्ट प्रकाश को लिये निर्मल एक सहज

स्वभावी नित्य उद्योत रूप उदय रहता है अर्थात् शुद्धानुभव करते हुवे केवल ज्ञानका लाभ होजाता है। आत्मा परमात्मा बन जाता है अरहन्त पना प्रगट होजाता है। आयु के अन्त होने पर अन्त के चौदहवें गुण स्थान में ठहर कर जितनी देर में अ, इ, उ, ऋ, लृ इन पांच लघु अक्षरों का उच्चारण होता है उतने ही समय में चौथे व्युपरत क्रिया निवृत्ति नाम शुक्ल ध्यान के प्रभाव से वेदनीय आयु, नाम, गोत्र इन चारों घातिया कर्मों का नाश होजाता है। औदारिक, तैजस, कार्माण इन तीनों शरीरों का नाश होजाने से परम सिद्ध पद अर्थात निर्वाण पद की प्राप्ति होजाती है सम्यक् ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सुख, सूक्ष्मत्व, अव्याबाध और अवगाहनत्व ये स्वभाविक गुण पूर्ण रूप से प्रगट होजाते हैं क्षण भर में ही लोक के शिखर पर जा विराजते हैं वहाँ नित्य, निरञ्जन अपने शरीर से कुछ न्यून, अमूर्त, आत्मा से उत्पन्न हुये सुख में तल्लीन हो विराजमान रहते हैं। इस प्रकार जिस अरहन्त भगवान ने संसार के समस्त झगड़ों को त्याग घातिया कर्मों का नाश कर केवल ज्ञान लक्षण संयुक्त परम अरहन्त पद को प्राप्त किया और फिर आयु के अन्त में शेष अघातीय कर्मों को भी क्षय करके अभूत पूर्व परम निर्वाण पद को प्राप्त किया है वही अरहन्त सच्चे सुगत हैं उन्होंने ही मोक्ष रूपी परम गति

को प्राप्त किया है।

संसार में अनादि काल से मिथ्या दृष्टि जीव को अपने शुद्ध स्वभाव की पहिचान नहीं है। इसी कारण वह सदा अपने रागादि परिणामों का कर्त्ता अपने आप को माना करता है। वह कभी भी ऐसा अनुभव नहीं करता कि मैं शुद्ध आत्मा हूं, अखंड ज्ञान स्वभाव हूं और रागादि कर्म जनित विकार मेरे में नहीं हैं परन्तु एक सम्यक् दृष्टि भेद विज्ञान का सूर्य प्रकाशमान होजाने पर मिथ्यात्व अंधकार के नष्ट होजाने से, अपने आप को जगत का व अपने ऊपर कर्मों के उदय होने पर भी नाना प्रकार अवस्थाओं का मात्र ज्ञाता दृष्टा रहता है। उस के कभी ऐसा श्रद्धान नहीं हो पाता कि मैं पर भावों का कर्ता हूं। उस के श्रद्धान से पर भाव के कर्ता पने की मिथ्या बुद्धि सर्वथा नष्ट हो जाती है। ज्ञान का सूर्य उसको आत्मा में प्रकाशमान रहता है। सदैव ही ज्ञानरूपी सूर्य के निमित्त से उसकी आत्मा में प्रभात कासा प्रकाश रहता है। ज्ञाता रहता हुआ वह सुखी रहता है। एक सम्यक् दृष्टि के ज्ञान में स्पष्ट पने व अल्प पने की अपेक्षा कमी होती है। परन्तु विपरीतता रहित तथा संशय रहित होने की अपेक्षा श्रुत ज्ञानी व केवल ज्ञानी का ज्ञान समान है। सम्यक् दृष्टि का ज्ञान चाहे थोड़ा हो चाहे बहुत

केवली के समान पदार्थों के स्वभाव को जैसा का तैसा जानता है। तीर्थंकर भगवान जन्म से ही क्षायिक सम्यक् दृष्टि होते हैं। मति, श्रुति, अवधि, तीन ज्ञान के धारी होते हैं मिथ्यात्व का उनकी आत्मा में प्रवेश तक भी नहीं हो सकता। प्रभु के शुक्ल ध्यान तथा आत्म समाधि के बल से सर्व अज्ञान का अंधकार सदैव के लिये नष्ट हो गया और पूर्ण केवल ज्ञान रूप सूर्य का प्रकाश होगया जिस में लोक अलोक के समस्त पदार्थ अपनी२ भूत भविष्यत वर्तमान काल सम्बन्धी समस्त पर्यायों तथा गुणों को लिये हुए एक समय मात्र में युगपत झलकते हैं जिस प्रकार सूर्य के उदय होने पर सूर्य की किरणों द्वारा अन्धकार छिन्न भिन्न हो जाया करता है उसी प्रकार प्रभु के शरीर के प्रभाव मंडल के द्वारा बाहरी अन्धकार नष्ट भ्रष्ट होगया और अन्तरङ्ग का गहन अज्ञान अन्धकार केवल ज्ञान रूपी सूर्य की किरणों द्वारा नष्ट कर दिया गया। इसी कारण अरहन्त भगवान ही सच्चे दिवाकर हैं अन्य कोई कल्पित दिवाकर भगवान नहीं है। जगत के भोले लोग सूर्य ग्रह को देवता मान कर पूजते हैं यह उन की मिथ्या कल्पना है, विडम्बना है। कहां ज्योतिषी देव सूर्य और कहाँ सर्वज्ञ वीतराग अरहंत परमात्मा उनके सामने सूर्य कुछ नहीं। सूर्य की किरणें जब फैलती हैं बाहर का

अन्धेरा मिट जाता है। सूर्य सदा के लिये प्रकाशमान नहीं रहता। प्रभु का केवल ज्ञान रूपी सूर्य अद्भुत है जो सदैव प्रकाशित रहता है प्रभु के परमौदारिक शरीर की प्रभा का मंडल ऐसा तेजस्वी होता है कि उस के द्वारा सदा ही बाहरी अन्धकार दूर रहता है। सूर्य को रात्रि का तम ग्रस लेता है, केवल ज्ञान रूपी सूर्य को कोई तम ढाँप नहीं सकता, सूर्य तो मात्र बाहरी अन्धकार कुछ देर के लिये हटाता है परन्तु अन्तरंग में वह अज्ञानी है उस के बहुत ही अल्प ज्ञान है। उस के अन्तरंग में केवल ज्ञानावरण का पूर्ण अन्धेरा व्याप्त है जिसे वह दूर करने को असमर्थ है। उस सूर्य की और प्रभु के केवल ज्ञान रूपी सूर्य की क्या तुलना। इस सूर्य को तो केवल अज्ञानी मूढ़, मिथ्यात्वी मनुष्य ही नमस्कार करते हैं परन्तु प्रभु के केवल ज्ञान रूपी सूर्य को बड़े२ इन्द्रादि देव भी नमस्कार करते हैं। यह सूर्य तो मात्र ज्योतिषी देवों का ही इन्द्र है। केवल ज्ञान रूपी सूर्य के धारण करने वाले श्री अरहंत परमेष्ठी बड़े२ गणधरादि मुनियों द्वारा पूजनीक हैं वह ही सच्चे दिवाकर हैं।

सम्यक् दृष्टि जीव की परिणति संसार से बिलकुल पराङ्मुख होती है, वह अपने शुद्ध आत्मीक रस का ही आस्वादी हो जाता है, उसी आत्मीक अखाड़े में ही

कल्लोल करता है। इस शुद्ध स्वात्मानुभव के प्रताप से ऐसा नवीन कर्मों का बंध नहीं होता कि जिसको बंध कहा जा सके। पूर्व कर्म उदय में आ कर लगातार झड़ते रहते हैं। इसी कारण वह शीघ्र ही मुक्त होने के सम्मुख हो जाता है, वास्तव में आत्मानुभव की अपूर्व महिमा है। एक क्षायिक सम्यक् दृष्टि जीव जब तक अप्रत्याख्याना-वरण कषाय का उपशम ग्रहस्थावस्था ही में रह कर आत्म ध्यान के बल से नहीं कर सकता तो ग्रहस्थ में रह कर ही धर्म अर्थ काम पुरुषार्थ का साधन करता है, जब आत्म ध्यान के बल से अप्रत्याख्यानावरणी कषायों को भी जीत लेता है तो श्रावक के व्रतों का पालन करता है और जब प्रत्याख्यानावरण कषायों को भी जीत लेता है तो ग्रहस्थ को त्याग कर साधु का निर्ग्रन्थ पद धारण करता है जिस से कषाय भाव के मूल कारण मोह-नीय कर्म का समूल नाश किया जावे। साधु पद में एकाग्र चित्त हो धर्म ध्यान तथा शुद्ध ध्यान का ऐसा दृढ अभ्यास करता है कि ध्यान रूपी अग्नि को प्रज्वलित करके मोह पिशाच को उसमें भस्म कर डालता है। जब विषय कषाय भाव के उत्पन्न करने वाला मोह भस्म हो जाता है तो क्षीण मोह नामा गुण स्थान में एकत्व वितर्क शुक्ल ध्यान में लीन हुआ एक अंतर मुहूर्त्त की आंच से

ही ज्ञानावरणीय, दर्शनावरण तथा अन्तराय कर्म को नाश कर डालता है, केवल ज्ञान सूर्य का अद्भुत प्रकाश होता है और प्रभु सर्वज्ञ परम वीतराग क्षुधा तृषादि अठारह दोष रहित अरहन्त परमात्मा हो जाते हैं। यही अरहन्त परमात्मा जिन्हों ने स्वात्मानुभूति द्वारा ध्यानाग्नि को प्रज्वलित कर कर्म रूपी शत्रुओं को दग्ध कर डाला सच्चे वैश्वानर हैं उनके सिवाय और कोई वैश्वानर अर्थात् अग्नि देवता पूज्यनीय नहीं हैं। कितने ही भोले लोग अग्नि को देवता मान उसकी उपासना करते हैं, यह मूढता है, अज्ञानता है। शुक्ल ध्यान रूपी अग्नि ही आदरनीय है, जो उस ध्यान अग्नि को अपनी आत्मा में प्रज्वलित करता है वह अपनी आत्मा में से अनादिकाल से लगे मैल को काटता है। वीतरागता की अग्नि से सब ही पूर्व बद्ध कर्म भस्म हो जाते हैं, उनकी कर्मत्व शक्ति नष्ट हो जाती है। कर्मोदय से संयोग में आने वाले तथा तिष्टने वाले तैजस शरीर और औदारिक शरीर भी सर्वथा छूट जाते हैं, उस समय यह आत्मा बिलकुल अकेला अपनी ही शुद्ध सत्ता में प्रकाशमान झलकता है जैसे मेघ रहित सूर्य चमकता है, मल रहित रत्न चमकता है तथा मुक्ति प्राप्त आत्मा स्वभाव से ऊर्द्ध गमन करके लोक के शिषर भाग में अनन्त काल के लिये अपने

ही स्वरूप में रमण करता हुआ निजानंद का स्वाद लेता है। कर्म बंध के कारणों का अभाव हो जाने से फिर वह कभी भी बंध को प्राप्त नहीं होता है और न लौट कर फिर कभी संसार में आता है।

अरहन्त भगवान समस्त लोकालोक को जानते हैं इस लिये सर्वज्ञ हैं, समस्त लोक, अलोक को देखने वाले हैं इस लिये सर्व लोचन अर्थात् सर्व दर्शी हैं भगवान के सब नाम सार्थक हैं। आत्मा में अनन्त गुण हैं तथा अनंत पर्याय हैं। प्रभु की आत्मा में अनन्त गुणों का प्रकाश हो रहा है, जितने गुण हैं उतने ही सार्थक नाम प्रभु के हैं, चार ज्ञान के धारी गणधर भगवान भी प्रभु के अनन्त गुणों का पार नहीं पा सकते। मंद बुद्धि अल्पज्ञों का तो कहना ही क्या है? ऐसे प्रभु के गुणों की महिमा जान कर भक्त जनों को प्रभु के गुणों का चिंतवन कर उनके सार्थक नामों द्वारा उनकी स्तुति भक्ति करनी चाहिये, भगवान के गुणों की स्तुति आराधक की आत्मा के लिये परम सुखदायी होगी।—

**अर्हन् प्रजापतिर्बुद्धः परमेष्ठी जिनो जितः।**
**लक्ष्मीभर्त्ता चतुर्वक्त्रो केवलज्ञानलोचनः॥४५॥**

अन्वयार्थ—(अर्हन) पूजने योग्य (प्रजापति) सर्व

विश्व का स्वामी (बुद्धः) सर्वज्ञ (परमेष्ठी) परम पद में रहने वाला (जिनः) कर्म शत्रुओं को जीतने वाला (अजिताः) दूसरों के द्वारा न जीता जाने वाला (लक्ष्मी भर्त्ता) आत्मीक विभूति का स्वामी (चतुर्वक्त्रोः) चार मुख दिखने वाला (केवल ज्ञान लोचनः) केवल ज्ञान नेत्र का धारक

**अम्भोजनिलयो ब्रह्मा विष्णुरीशो वृषध्वजः।**
**आतपत्रत्रयोद्भासी शंकरो नरकान्तकः ॥४६॥**

अन्वयार्थ—(अम्भोज निलया) कमलासन पर विराजमान (ब्रह्मा) धर्म मार्ग के कर्त्ता (विष्णु) ज्ञान अपेक्षा सर्व व्यापी (ईशः) ईश्वर (वृषध्वजः) धर्म की ध्वजा फैहराने वाले (आतपत्रत्रयोद्भासी) तीन छत्रोंसे शोभायमान (शंकरः) कल्याण कर्त्ता (नरकान्तकः) यम का अन्त करनेवाला

**निर्मलो निष्कलश्चैव विधाता धर्म एव च ।**
**परमपापनाशश्च परमज्योतिरव्ययम् ॥४७॥**

अन्वयार्थ—(निर्मलः) रागादि मल रहित बीतराग (च निष्कलः एव) वैसे हो शरीर रहित (विधाता) मोक्ष मार्ग का प्ररूपक (धर्म एव च) और वह धर्म रूप ही है (परम पाप नाशश्च) और परम पाप मिथ्यात्व का नाश करने वाला है (परम ज्योति) परम ज्योति स्वरूप है (अव्ययम्) अविनाशी है ।

**योगीश्वरो महायोगी लोकनाथोः भवान्तकः ।**
**विश्वचक्षुर्विभुः शम्भुर्जगच्छिखरि शेषरा ॥४८॥**

अन्वयार्थ—(योगीश्वरः) योगियों का स्वामी (महा-योगी) महान् ध्यानी (लोकनाथः) तीन लोक का नाथ (भवान्तकः) संसार का अन्त करने वाला (विश्वचक्षुः) जगत को देखने वाला (विभुः) सर्व व्यापी (शम्भु) शान्ति का करने वाला (जगच्छिखरि शेषरः) तीन लोक के ऊपर मुकुट के समान विराजमान रहने वाला।

अब आगे आचार्य वर परमात्मा के शुभ सार्थक नामों द्वारा भगवान के गुणों का स्तवन करते हैं:—

अर्हन—पूजने योग्य परम पूज्य होने से तथा जगत के समस्त प्राणियों द्वारा आराधना करने योग्य होने से अर्हन हैं।

प्रजापति—ऊर्द्ध, मध्य, पाताल तीनों लोकों के स्वामी होने से अथवा जगत के जीवों को धर्मोपदेश देने के कारण प्रजापति हैं।

बुद्धः—केवल ज्ञानी होने से अथवा जगत के समस्त पदार्थों की भूत भविष्यत, वर्तमान काल संबंधी समस्त पर्यायों तथा गुणों का एक समय मात्र में युगपत जानने की अपेक्षा से बुद्ध हैं।

परमेष्ठी—इन्द्रादिकों द्वारा पूज्य मोक्षस्थान में

तिष्ठने से तथा अरहन्त पद में स्थित रहने के कारण भगवान आप्त परमेष्ठी हैं।

जिनः—भगवान ने कर्म रूपी शत्रु अथवा काम क्रोध आदि रागद्वेष शत्रुओं को जीत लिया है, इस कारण से जिन अर्थात् विजयता कहलाये।

अजितः—काम क्रोधादि किसी भी योद्धा से भगवान जीते नहीं जाते, समस्त विभाव परणति जिसने परास्त कर दी है और जिसका संयोग अब आगे फिर कभी नहीं हो सकता वे ही भगवान अजित हैं उनको न तो कोई वहिरंग का शत्रु और न मोह रूपी महामल्ल अन्तरंग का शत्रु जीत सकता है।

लक्ष्मी भर्त्ताः—भगवान अर्हन्त अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत वीर्य, अनंत सुख रूप अंतरंग की स्वाधीन अविनाशीक लक्ष्मी, तथा इन्द्रादिक देवों द्वारा वंदनीक समवसरणादिक वहिरंग लक्ष्मी के स्वामी हैं, इसी लिये लक्ष्मी भर्त्ता हैं।

चतुर्वक्त्रः—अरहन्त भगवान की अतिशय होती है, कि जब प्रभु समवसरण में कमलासन पर विराजमान होते हैं तो केवल एक मुख होते हुवे स्वामी के चारों ओर से दर्शन होते हैं अथवा दर्शकों को भगवान के चारों दिशाओं में चार मुख दिखाई पड़ते हैं। इसी कारण प्रभु

चतुर्वक्त्र कहलाते हैं।

केवल ज्ञान लोचन---भूत, भविष्यत, वर्तमान तीनों काल संबंधी सकल पदार्थों के समस्त गुण पर्यायों को एक समय मात्र में युगपत जानने वाला केवल ज्ञान रूपी नेत्र जिस अरहन्त भगवान के है, वही केवल ज्ञान लोचन के धारण करने वाले हैं।

अंभोज निलयः---भगवान अरहन्त समवसरण में रत्नमयी तीन कटनी वाली गन्ध कुटी में कमलासन पर चार अंगुल अन्तरीक्ष विराजमान होते हैं इसी कारण अंभोज निलयः अर्थात् कमलासन पर विराजमान कहलाते हैं।

ब्रह्मा---अरहन्त भगवान धर्म मार्ग के कर्त्ता हैं। उनकी आत्मा में केवल ज्ञानादि समस्त गुण परम वृद्धि को प्राप्त हुवे हैं, इस लिये वे ही ब्रह्मा हैं।

विष्णुः---केवल ज्ञान की अपेक्षा से भगवान अरहंत जगत के समस्त पदार्थों में व्यापक हैं इसी लिये विष्णु हैं।

(देखो टीका श्लोक ३१)

ईशः---अरहन्त भगवान अनन्त बल के धारक हैं, समस्त जीवों के सच्चे प्रतिपालक और रक्षक हैं, इसी वास्ते ईश हैं।

वृषध्वजः---अरहन्त भगवान भव्य जीवों को अपनी

दिव्य ध्वनि द्वारा धर्मोपदेश देते हैं अर्थात् जगत में धर्म-ध्वजा को फहराते हैं, इसी कारण धर्म ध्वज कहलाते हैं।

आत्पत्रयोद्भासीः—जब भगवान गंध कुटी में कमलासन पर विराजमान होते हैं तो प्रभु के मस्तक पर तीन छत्र अद्भुत कांति को लिये शोभायमान होते हैं, मानो यह तीन छत्र भव्य जीवों को प्रभु के तीन लोक के ईश होने की सूचना ही दे रहे हैं। इसी अपेक्षा से अरहंत प्रभु "आत्पत्रयोद्भासी" अर्थात् तीन छत्रों से शोभायमान कहलाते हैं।

शंकरः—जगत के समस्त जीवों का कल्याण करने की अपेक्षा अरहन्त भगवान ही शंकर हैं

(देखो टीका श्लोक २६)

नरकान्तकः—जिन्होंने नरक का अन्त कर दिया है अर्थात् संसार संबंधी समस्त दुःखों से रहित हो गये, जिनके कभी, आर्त्त और रौद्र ध्यान संभव नहीं है। जिन्हों ने मरण का भी अन्त कर दिया है वे ही भगवान सच्चे नरकान्तक हैं।

निर्मलः— जिस ने काम तथा कषायादिक भाव मल को नष्ट कर दिया है, जिसने ज्ञानावरणादिक कर्म मल को नष्ट कर दिया है जो मल, मूत्र, वात, पित्तादि शरीर मल तथा निगोद रहित परम औदारिक छाया रहित

कान्ति युक्त क्षुधा तृषादि अठारह दोष रहित शरीर में तिष्ठता है वह अरहन्त भगवान ही निर्मल है।

निष्कलः—जब चार अघातिया कर्मों का नाश करने पर अरहन्त परमेष्ठी सिद्ध परमात्मा होजाते हैं तो सर्वथा कर्म रहित हो जाने से सिद्ध भगवान शरीर रहित हो जाते हैं किसी प्रकार का शरीर उनके नहीं रहता है। इस लिये भगवान आप्त ही "निष्कलः" अर्थात् शरीर रहित हैं।

विधाता—मोक्ष मार्ग के प्ररूपक होने से तथा धर्म रूप सृष्टी के कर्ता होने से और सब के गुरु होने की अपेक्षा से अरहन्त भगवान ही विधाता हैं। व्यवहार धर्म तथा निश्चय धर्म का उपदेश भगवान ने अन्य जीवों के कल्याण के निमित्त किया है। व्यवहार में धर्म दयामय है, दश लक्षण रूप है, रत्न त्रय रूप है निश्चय से धर्म आत्मा का निज स्वभाव ही है, व्यवहार धर्म साधन है निश्चय साध्य है, निश्चय धर्म न हो तो सब व्यवहार धर्म वृथा है मोक्ष का साधक नहीं।

धर्म—अरहन्त भगवान स्वयं साक्षात धर्म की मूर्ति हैं धर्म ही हैं वस्तु स्वभाव को उन्हों ने अपने आत्मा में पूर्ण रूप से विकसित किया है। प्रभु जगत के भव्य जीवों के लिये सच्चे पथ प्रदर्शक हैं। प्रभु की दिव्य ध्वनि द्वारा

उपदेश को सुन कर अनेक भव्य जीवों का उद्धार होजाता है, कोई सम्यक्त्व धारण करता है, कोई श्रावक के व्रत पालन करने लगता है, कोई दिगम्बरी दीक्षा धारण कर तपश्चरण के बल से कर्म बन्धनों को काट परम धाम अर्थात मोक्ष पद को प्राप्त होता है। प्रभु के वचनामृत का पान करके अनेक भव्य जीव अपना कल्याण करते हैं वास्तव में प्रभु धर्म का प्रचार कर भव्य जीवों के परम हित का संपादन करते हैं। इस हेतु से भगवान अरहन्त स्वयं ही धर्म रूप हैं धर्म के अवतार हैं अथवा रत्न त्रय मई धर्म उनकी आत्मा में पूर्ण रूप से प्रकाशमान है तथा वे अपने वीतराग स्वरूप से ही धर्म का प्रकाश कर रहे हैं इस लिये वे ही स्वयं धर्म रूप हैं।

परम पाप नाशश्च—परम पाप मिथ्यात्व का नाश करने वाला है, मिथ्यात्व इस जीव का परम शत्रु है। अनादि काल से संसारी जीव मिथ्यात्व नामा कर्म के वशीभूत हो निज स्वरूप तथा पर की पहिचान बिना पर्याय बुद्धि हो रहा है कर्मोदय से जिस पर्याय को प्राप्त होता है उसी पर्याय को अपना निज स्वरूप जान अपने सत्यार्थ रूप से सर्वथा विमुख हो चतुर्गति रूप संसार में भ्रमण कर रहा है देव कुदेव धर्म कुधर्म, गुरु सुगुरु, पाप पुण्य हेयोपादेय के विचार रहित कर्म के उदय के रस में

एक रूप हुवा अपने हित अहित से सर्वथा अनभिज्ञ पर द्रव्यों में लालसा रूप हो कर संक्लेशित हो रहा है। बुद्धि में भ्रम हो रहा है। काल लब्धि के निमित्त से अन्तरङ्ग में दर्शन मोह तथा अनन्तानुबन्धी का क्षय होने पर क्षायक सम्यक् दर्शन की प्राप्ति होती है जब सम्यक् प्रकाशमान होजाता है तो आत्मानुभूति भी साथ में ही होती है, दोनों का अविनाभावी सम्बन्ध है सम्यक् दर्शन के होते ही शुद्ध आत्मानुभव का आनन्द आने लगता है। संसार तथा देह भोगों से उदासीन रहता है अप्रत्याख्यानावरण कषाय को जीत श्रावक के व्रतों का पालन करता है। आत्म बल की वृद्धि होने पर प्रत्याख्यानावरण कषाय का अभाव कर समस्त परिग्रह का त्याग कर साधु पद को ग्रहण करता है। क्षपक श्रेणि में चढ़ परम शुक्ल ध्यान के बल से चारों घातिया कर्मों को नष्ट कर अरहन्त पद को प्राप्त होता है। अरहन्त भगवान ने अनादि से चले आये मिथ्यात्व रूप महान् शत्रु का नाश कर मुनि पद धारण कर तपश्चरण के बल से घातिया कर्मों को क्षय करके अरहन्त पद को प्राप्त किया है, इस लिये वे ही मिथ्यात्व रूप महा पाप के विध्वंश कर्ता हैं अन्य और कोई नहीं वे ही सच्चे परम पाप नाशक हैं।

परमज्योतिः—मोक्ष मार्ग के प्रकाशक हैं तथा

अरहन्त परमेष्ठी में शुद्ध चेतना मई परम ज्योति पूर्ण रूप से प्रकाशमान हो रही है जिस में जीवादिक समस्त पदार्थ अपने२ आकार गुण तथा अतीत, अनागत, वर्तमान, संबन्धी पर्यायों सहित ठीक उसी प्रकार प्रतिबिम्बित हो रहे हैं जैसे कि दर्पण में घट पटादिक पदार्थ प्रतिबिम्बित होते हैं। इसी अपेक्षा से अरहंत भगवान परम ज्योति हैं।

अव्यय-अविनाशी – भगवान अरहन्त ही अविनाशी हैं कर्मों को नष्ट कर वह अजर अमर हो गये हैं। शेष चारों अघातिया कर्मों को नष्ट कर मोक्ष के अविनाशी पद को प्राप्त होंगे जहां से संसार में लौट कर आना नहीं। इस लिये अरहन्त भगवान ही अव्यय हैं।

योगीश्वरः—समस्त योगियों के ईश्वर होने से अरहन्त भगवान ही योगीश्वर हैं।

महा योगी—मन, बचन, काय तीन योग होते हैं इन तीनों का सम्यक् दर्शन पूर्वक अत्यन्त निरोध कर देने से एक साधु महा योगी कहलाता है। अरहन्त भगवान ने परम शुक्ल ध्यान द्वारा इन तीनों योगों की चपलताई का पूर्ण रूप से निरोध किया है, इस लिये वे ही सच्चे महा योगी हैं।

लोक नाथः—तीनों लोकों के नाथ होने से अरहन्त भगवान ही लोक नाथ हैं, त्रैलोक के जीवों द्वारा

पूज्यनीय हैं, आपका शासन लोक के जीवों का परम हितकर्ता है।

भवान्तक--अनादिकाल से जीव चतुर्गति रूप संसार में भ्रमण कर रहा है, नाना प्रकार के दुःखों का पात्र बन रहा है, अरहंत भगवान ने भव भ्रमण के कारण मिथ्यात्व और अज्ञान का सर्वथा अभाव कर डाला है, चार घातिया कर्मों को समूल नष्ट कर देने पर तो अरहंत परमात्मा हुए, शेष चार अघातिया कर्मों को नष्ट करने पर मोक्ष की पंचमगति को प्राप्त किया अब संसार में आना नहीं, संसार में भ्रमण करने के कारण नष्ट होगये इस लिये अरहंत भगवान ही भवान्तक हैं ।

विश्वचक्षुः—समस्त जगत को पूर्ण रूप से देखने वाले होने से अरहंत भगवान ही "विश्वचक्षु" हैं।

विभुः—केवल ज्ञान की अपेक्षा से भगवान सब जगह व्याप्त हैं, अथवा जगत के जीवों को संसार समुद्र से पार करने में समर्थ हैं, अथवा परम विभूति संयुक्त हैं। अरहन्त भगवान दिव्य ध्वनि के द्वारा संसार के भव्य जीवों को हितोपदेश देकर संसार समुद्र से पार करने में समर्थ हैं, वे तारण तरण जहाज़ हैं, अनन्त चतुष्टय रूप अन्तरंग की, समवसरण आदि वहिरंग की परम विभूति संयुक्त हैं, इस लिये अरहंत भगवान ही विभुः हैं ।

शम्भुः—अरहन्त भगवान भव्य जीवों को परमानंद मोक्षरूप सुख को देनेवाले हैं, इसलिये वे ही सच्चे शम्भु हैं।

जगच्छिखरिशेखरः—तीनों लोकों के शिखर के ऊपर मुकुट समान विराजमान होने के कारण भगवान आप्त ही सच्चे "जगच्छिखरिशेखर" हैं। अरहन्त परमेष्ठी ही जब सिद्ध परमेष्ठी होते हैं तो लोक के शिखर पर सिद्ध शिला पर जा विराजमान होते हैं, जैसे चक्रवर्ती के शीस पर मुकुट शोभायमान होता है वैसे ही लोक के ऊपर मुख्य तथा सर्वोत्कृष्ट स्थान में विराजमान होने से वे सिद्ध भगवान मुकुट के समान परम शोभा को प्राप्त होते हैं।

**लोकाग्रशिखरावासी सर्वलोकशरण्यकः।**
**सर्वदेवाधिको देवो ह्यष्टमूर्तिर्दयाध्वजः ॥४६॥**

अन्वयार्थ—श्री अरहंत (लोकाग्र शिखरावासी) लोक के अग्रभाग पर रहने वाले (सर्व लोक शरण्यकः) सर्व लोकों को संसार से रक्षा करने वाले (सर्व देवाधि देव) सर्व देवों से उत्कृष्ट देव (हि) निश्चय से (अष्ट मूर्ति) ज्ञान दर्शनादि अष्ट गुणों सहित (दयाध्वज) दया धर्म की ध्वजा हैं।

**सद्यो जातो महादेवो देवदेवः सनातनः।**
**हिरण्यगर्भः सर्वात्मा पूतः पुण्यः पुनर्भवः ॥५०॥**

अन्वयार्थ--(सद्यो जातः) श्री अरहंत एक दम से अरहंत पद को प्राप्त होने वाले (महादेवः) महान् देव (देवदेवः) इन्द्रादिक देवों के द्वारा पूजनीक (सनातनः) अनादि काल से चले आने वाले महान प्राचीन (हिरण्य-गर्भः) जिनके गर्भ में आने के समय रत्न बरसते हैं। (सर्वात्मा) आत्मीक गुणों पूर्ण (पूतः) परमपवित्र (पुण्यः) महान् पुण्यवान (अपुनर्भवः) फिर संसार में जन्म मरण धारण नहीं करने वाले हैं।

रत्नसिंहासनाध्यासी नैकचामरवीजितः।
महामतिर्महातेजोऽकर्मा जन्मदवान्तकः ॥५१॥

अन्वयार्थ--श्री अरहंत (रत्नसिंहासनाध्यासी) रत्न-सिंहासन पर विराजमान होने वाले हैं (नैकचामरवीजितः) उन पर देव चौंसठ चमर ढोरते हैं (महामतिः) महान् ज्ञानी (महा तेजः) परम तेजस्वी (अकर्मा) क्रिया काँड से रहित कृत कृत्य (जन्मदवान्तकः) संसार रूपी अग्नि को बुझाने वाले हैं।

अच्युतः सुगतो ब्रह्मा लोकान्यो लोकभूषणः।
देवदुन्दुभिनिर्घोषः सर्वज्ञः सर्वलोचनः ॥ ५२ ॥

अन्वयार्थ--श्री अरहन्त आप्त भगवान (अच्युतः) अपने शुद्ध पद से रहित कभी नहीं होते (सुगतः) पंचम

गति निर्वाण को प्राप्त हैं (ब्रह्मा) धर्म मार्ग के प्रवर्तक (लोकान्तः) संसार का अन्त करने वाले (लोकभूषणः) तीन लोक में शोभनीक हैं (देवदुन्दुभिनिर्घोषः) उनके समवशरण में देवों ने दुन्दुभि बाजों का शब्द किया है (सर्वज्ञः) सर्वज्ञ और (सर्वलोचनः) सर्वदर्शी हैं।

**अच्छेद्योऽनवभेद्यश्च सूक्ष्मो नित्यो निरञ्जनः।**
**अजरो ह्यमरश्चैव शुद्धसिद्धो निरामयः ॥५३॥**

अन्वयार्थ—अरहंत भगवान (अच्छेद्यः) अविनाशी हैं (चानवभेद्यः) और किसी के द्वारा (भेद्य) भेदने योग्य नहीं है (सूक्ष्मः) उनका स्वरूप अनुभवगम्य है (नित्यः) वे अपने पद में शाश्वत रहने वाले हैं (निरञ्जनः) रागादिक अंजन से रहित निरञ्जन हैं (अजरः) जरा रहित और (अमरः हि) मरण रहित ही है (शुद्धसिद्धः) कर्म रहित होकर अपने कार्य को सिद्ध कर चुके हैं (निरामयः) रोग रहित हैं।

**अक्षयो ह्यव्ययः शान्तः शान्तिकल्याणकारकः।**
**स्वयंभूर्विश्वदृश्वा च कुशलः पुरुषोत्तमः ॥५४॥**

अन्वयार्थ—श्री अरहंत भगवान् (अक्षयः) के गुण क्षयरहित हैं (हि) निश्चय से वे (अव्ययः) अपने द्रव्य स्वभाव से रहित नहीं होते ( शान्तः ) परम वीतराग हैं

(शान्ति कल्याण कारकः) दूसरों को मंगल व शान्ति के कर्ता हैं (स्वयंभू) वे स्वयं अपने पुरुषार्थ से आप्त हुये हैं (विश्वदृश्वा) सर्वदर्शी हैं (च कुशलः) और हितकर्ता हैं (पुरुषोत्तमः) सब पुरुषों में श्रेष्ठ हैं।

भावार्थ—लोकाग्र शिखरावासी—लोकाकाश के ऊपर सिद्ध शिला पर विराजमान होने से भगवान आप्त ही सच्चे "लोकाग्र शिखरावासी हैं" अरहन्त भगवान चारों अघातिया कर्मों का अभाव हो जाने पर शरीर रहित निकल परमात्मा हो एक समय मात्र में लोक के अग्रभाग में विराजमान हो जाते हैं, शरीर रहित होने पर सिद्ध अर्थात् मुक्तात्मा की गति घुमाये हुवे कुम्हार के चक्र की तरह पूर्व प्रयोग से, लेप से रहित तूंबी के समान कर्म संबन्ध छूट जाने से एरंड के बीज की तरह बन्धन में से छूट कर निकल जाने से, अग्नि की शिखा की तरह ऊर्द्ध गमन स्वभाव से ऊपर को होती है, लोक के अन्त में सिद्धक्षेत्र पर विराजमान होते हैं उस से आगे गमन में कारणभूत धर्मास्तिकाय का अभाव होने से नहीं जाते। वहां तिष्टे हुवे इन्द्रियों के विषयों से अतीत अविनाशी परम सुख को अनन्त काल तक भोगते रहते हैं।

सर्वलोक शरण्यकः—अरहन्त भगवान चतुर्गति रूप संसार में भ्रमण करते हुवे प्राणियों को शरण देने वाले

हैं। जो भी भव भय भीत भव्य जीव प्रभु की शरण में आते हैं। उन्हें प्रभु रत्न त्रय रूप मोक्ष मार्ग में लगा उन को निर्भय बनाते हैं। भगवान का शासन प्राणीमात्र का हित करने वाला है। पूर्ण रूप से जीव को संसार दुखों से छुड़ा कर परमात्म पद में स्थित करने वाला है। तीन लोक में अरहन्त भगवान ही सर्वोत्तम शरण हैं, जो भी प्राणी प्रभु की वाणी द्वारा प्रतिपादित वस्तु स्वरूप को यथार्थ जान कर शुक्ल ध्यान रूपी अग्नि में कर्मों को भस्म कर डालता है वह ही मोक्ष के अक्षय, अनन्त, अविनाशी सुख को प्राप्त करता है। जो अरहन्त भगवान का आराधन करता है वह स्वयं आराध्य तथा पूज्य बन जाता है। इसी हेतु से अरहन्त भगवान ही जगत के समस्त जीवों के परम शरण हैं।

सर्वदेवाधि देव—जगत में जितने भी देव हैं उन सब देवों के भी देव होने से अर्हन्त भगवान ही सर्वदेवाधि-देव कहलाते हैं।

अष्टमूर्त्ति—अरहन्त भगवान जब चार अघातिया कर्मों को नष्ट कर मुक्ति को प्राप्त होते हैं तो वे सिद्ध परमात्मा कहलाते हैं, अष्ट कर्मों के नष्ट होने से उनकी आत्मा में अष्ट गुण प्रगट होते हैं जैसे मोह के नाश से सम्यक्त्व, ज्ञानावरणीय के नाश से ज्ञान, दर्शनावरणीय के

नाश से दर्शन अन्तराय के नाश से अनंतवीर्य, गोत्र कर्म के नाश से अगुरु लघुत्व, नामकर्म के नाश से सूक्ष्मत्व, आयु के नाश से अवगाहनत्व तथा वेदनीय के नाश से अव्याबाधत्व गुण प्रगट होते हैं। ऐसे वे कर्म रहित परमात्मा इन गुणोंकी अपेक्षा से "अष्ट मूर्त्ति कहलाते हैं।

दयाध्वजः—प्रभु ने अपने जीवन में पूर्ण अहिंसा मय धर्म का पालन किया, सर्वोत्कृष्ट अहिंसा का पूर्ण विकाश अपने आत्मा में किया भव्य जीवों को अहिंसा मय जीवन व्यतीत करने का उपदेश दिया, दया को ही धर्म का मूल बताया। भगवान ने परम दया भाव के प्रगट होने से पूर्ण अहिंसा की सिद्धि के लिये ही क्रोधादि अंतरंग के परिग्रह तथा धन धान्यादि बहिरंग के परिग्रह का त्याग किया, समस्त परिग्रह से ममता हटाली पूर्ण अहिंसा की सिद्धि के लिये ही प्रभु ने काम विकार को जीत निर्विकार बालकवत् निर्भय हो कर परम दिगंबर दीक्षा को धारण किया राग द्वेषादि विभाव परणति को दूर कर आत्मा में से हिंसा तथा अदया के भाव को समूल नष्ट कर डाला भगवान ने दया को धर्म की बेल बताया है, भगवान का धर्म दया प्रधान है इसी कारण भगवान दयाध्वज कहलाते हैं, प्राणी मात्र पर दया करना ही आपकी प्रसिद्ध ध्वजा संसार में फहरा रही है।

सद्यो जातः—अरहन्त भगवान ने चार घातिया कर्मों का नाश करते ही तुरंत झट से अरहन्त पद को प्राप्त किया है इस कारण से सद्योजात कहलाये।

महादेव—देवों के भी देव होने से अरहन्त प्रभु ही महादेव हैं। आप से बढ कर और कोई देव नहीं हैं।

देवदेवः—इन्द्रादि समस्त देवों के देव होने से तथा उनके द्वारा पूज्य होने के कारण भगवान अरहन्त देव ही "देव देव" हैं।

सनातनः—तीनों कालों में आप सदा रहने वाले हैं, महा पराचीन हैं, आप अनादि काल से चले आ रहे हैं। जिन धर्मानुसार संसार अनादि है, षट् द्रव्य मयी है, न इसका कोई आदि है न इसका अंत है। एक संसारी आत्मा का कर्मों के साथ अनादि सांत सम्बंध सुवर्ण और कीट समान अनादिकाल से चल आरहा है। सोना कीट सहित ही खान से निकलता है, फिर एक चतुर जानकार न्यारिया अग्नि में तपाने आदि प्रयोगों द्वारा उसे कीटि कालमा से साफ़ करके शुद्ध बना लेता है और वह निज शुद्ध स्वभाव में प्रकाशमान होता है, ठीक उसी प्रकार संसार भ्रमण से भयभीत एक भेद विज्ञानी सम्यक् दृष्टि साधु तपश्चरण के बल से परम शुक्ल ध्यान रूपी अग्नि के प्रयोग से अनादि से लगी कर्म

कालिमा को भस्म कर, परम शुद्ध अरहन्त पद को प्राप्त होता है, फिर शेष अघातिया कर्मों का नाश कर मोक्ष के अविचल सुख को सदैव के लिये भोगता है। इस प्रकार आत्मा शुद्ध निश्चय नय से धारा प्रवाह अपने निज गुणों में स्थित अनादि काल से चला आरहा है और अनन्त काल तक चलता रहेगा, कभी किसी ने बनाया नहीं, इसका कोई आदि नहीं न कभी इसका विनाश होगा। इसी अपेक्षा से अरहन्त भगवान सनातन हैं।

हिरण्यगर्भः--तीर्थंकर भगवान के गर्भ कल्याणक के समय इन्द्रादिक देवों द्वारा सुवर्ण की वृष्टि होती है, इस लिये भगवान तीर्थंकर ही हिरण्यगर्भ हैं।

सर्वात्मा—प्रभु का शरीर परम सुन्दरता को लिये होता है, तथा प्रभु की आत्मा में अनन्त गुण प्रकाशमान होते हैं इसलिये प्रभु सब को प्रिय होते हैं, इसी कारण स्वामी अरहंत भगवान ही सर्वात्मा हैं अथवा अनन्त आत्मीक गुणों से परिपूर्ण होने के कारण भी भगवान अरहन्त सर्वात्मा हैं।

पूतः—प्रभु परम पवित्र हैं, बहिरंग में प्रभु परमौदारिक शरीर के धारी हैं। क्षुधा, तृषा, जरा, व्याधि, जन्म, मरण, भय, विस्मय, राग द्वेष, मोह, चिन्ता, रति, निद्रा,

मद, विषाद, स्वेद (पसीना), खेद, यह अठारह दोष प्रभु में नहीं रहे, शरीर को अशुच करने वाले कारण, मल, मूत्र, श्लेष्म, पसेव, आहार निहार आदिक का अभाव होने से प्रभु पवित्र हैं। अन्तरंग में मोह, भय, चिंता, राग द्वेषादि, तथा क्रोधादि कषायों का सर्वथा अभाव हो जाने से अरहन्त भगवान परम वीतराग तथा परम पवित्र हैं उन की आत्मा सर्वथा निर्दोष है, स्वामी ने कर्म मल को धोकर अपनी आत्मा को परम पवित्र, स्वच्छ और निर्मल बना लिया है, इसी कारण अरहन्त परमात्मा ही "पूतः" हैं।

पुण्यः—अरहन्त परमेष्ठी पुण्य के स्वामी हैं परम पवित्र केवल ज्ञान के धारी हैं, हितोपदेशो हैं, प्रभु की दिव्य ध्वनि द्वारा अनेक भव्य जीवों के कल्याण करने वाले धर्म का उपदेश होता है, प्रभु का मार्ग पुण्य रूप है हिंसादि महा पापों का निरोध करने वाला है, स्वामी परम पुण्योदय से वहिरंग की समवसरण आदि की लक्ष्मी तथा विभूति से संयुक्त हैं, परमौदारिक शरीर के धारक हैं, इन्द्रादिक देवों द्वारा पूज्यनीय हैं, इत्यादि समस्त कारणों से अरहन्त भगवान साक्षात स्वयं पुण्य मूर्त्ति हैं, पुण्य हैं, उनसे बढ कर और किसी का पुण्य नहीं, सर्वांग पुण्य हैं।

अपुनर्भवः—प्रभु ने चतुर्गति रूप भव भ्रमण का अन्त कर दिया, उनके जन्म मरण रूप संसार अब बाकी नहीं रहा, अब प्रभु संसार में उत्पन्न नहीं होंगे, वे अजन्म तथा अमर हो गये, ऐसा नहीं है कि भगवान फिर से जगत् का उद्धार करने के लिये मुक्ति से लौट फिर अवतार लें, वे सर्वथा जन्म मरण रहित हो गये, सदैव के लिये परम पवित्र मुक्ति धाम के निवासी हो गये, वहां से संसार में फिर लौट कर आना नहीं रहा। इसी कारण अरहंत परमात्मा ही "अपुनर्भव" हैं।

रत्नसिंहासनाध्यासी—प्रभु रत्नमई सिंहासन पर विराजमान होने वाले हैं।

नैकचामरवीजितः—स्वामी के मस्तक पर इन्द्रादिक देव चौंसठ चमर ढोरते हैं।

महामतिः—महाज्ञानी, केवल ज्ञान से प्रभु विभूषित हैं, उनसे बढ़ कर और किसी का ज्ञान नहीं, किसी की बुद्धि नहीं, इसी कारण भगवान अरहंत महामतिः हैं।

महातेजः—अतिशय तेजस्वी होने से तथा अतिशय पुण्यवान होने से अरहन्त भगवान ही "महातेजाः" हैं। प्रभु का शरीर तेजस्वी होता है, उनके शरीर के तेज के सामने कोटों सूर्य की प्रभा भी फीकी मालूम पड़ती है, उनका शरीर अतिशय सुन्दर तथा अत्यन्त कान्ति युक्त

होता है, अन्तरंग में मिथ्यात्व तथा अज्ञान तिमिर का नाश हो जाने से केवल ज्ञानरूपी सूर्य प्रकाशमान हो रहा है। प्रभु का तेज अतुल है, उसकी महिमा विचित्र है, कहा है कि प्रभु के तेज के सामने कोटों सूर्य चन्द्रमा भी शर्माते हैं "कोटि शशि भानु दुति तेज छिप जात हैं"। इस लिये भगवान अरहन्त ही "महातेजाः" हैं।

अकर्म—भगवान सर्व क्रियाकाँड से रहित परम कृतकृत्य हो गये, चारों पुरुषार्थों का साधन कर चुके, अब उन्हें कुछ करना बाकी नहीं रहा, जैसा कि कविवर स्वर्गीय भूधरदास जी ने अपने जैन शतक में कहा है :-

सवैया २३

करनो कछु न करन तें कारज,
तातें पाणि प्रलंब करे हैं।
रहो न कछु पांवन तें पैयो,
ताही तें पग नांहि टरे हैं॥
निरख चुके नैनन सब यातें,
नैन नासिका अणी धरे हैं।
कानन कहा सुने सो कानन,
जोग लीन जिनराज खड़े हैं॥

अरहन्त भगवान जगत के कर्तापने के विकल्प से रहित हैं वे जगत के न उपादान कर्ता हैं न निमित्त कर्त्ता

हैं पर का कर्त्तापना आत्मा का स्वभाव ही नहीं।

जन्म दवान्तकः—संसार भ्रमण रूप अग्नि को बुझाने वाले हैं, जो दशा एक अग्नि लगे हुवे बन में एक अंधे अज्ञानी तथा लूले मनुष्य की हुवा करती है, वही दशा संसार में मिथ्यात्वी, अज्ञानी, चारित्र विहीन संसारी जीवों की हो रही है, दुःखों से पीडित होकर अनेक पर्यायों में भ्रमण कर रहे हैं, उन्हें कहीं सुख की प्राप्ति नहीं हुई, सुख के सच्चे मार्ग पर चल कर भगवान अरहन्त देव ने उस भव भ्रमण की अग्नि को शान्त किया, अनन्त सुख को अपनी आत्मा में प्रगट किया, अन्य भव्य जीवों को उस अग्नि को शान्त करने का सच्चा मार्ग सुझाया, सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र रत्न त्रय रूप ही वह मार्ग है, जिस पर चल कर एक जीव कर्म दावानल को बुझा कर मोक्ष के अविचल सुख को प्राप्त कर सकता है। रत्नत्रय धर्म का ही साधन प्रभु ने किया इसके अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग मुक्ति का नहीं है, इसके बिना जीव सदैव ही दुःख का पात्र बना रहता है, कहा हैः—

"धर्म बिना चहुंगति में फिरै, चौरासी लख फिर२ धरै।
दुख दावानल मांहि तपंत, कबहु न किंचित सुख लहंत॥

इस संसार दावानल को ही प्रभु ने शान्त किया है

और मोक्ष की परमानंद दशा को प्राप्त किया, कहा है:-

"जो सम्यक् रत्न त्रय ध्यावै, जो रागादिक भाव बहावै।
सोई लोकालोक निहारै, परमानन्द दशा विस्तारै" ॥

जो प्रभु के इस रत्न त्रय धर्म की शरण लेता है वह अपने लिये भव भ्रमण की दाह को शान्त कर मोक्ष के परम अविनाशी सुख को प्राप्त होता है। इसी कारण भगवान अरहन्त ही "जन्म दवान्तक" हैं।

अच्युतः—प्रभु अपने स्वभाव में ही स्थित हैं। निज आत्मा के ज्ञान दर्शन गुण से कभी च्युत नहीं होते, अथवा अपने धर्म से च्युत नहीं होते। "वस्तु स्वभावो धम्मः" आत्मा का शुद्ध स्वभाव "चिदानंद" रूप है, कर्मों को नष्ट कर स्वामी ने अपने शुद्ध चिदानन्द रूप को प्राप्त किया है, उसी में स्थिर हैं, अब उससे कभी इधर उधर जाने का कोई कारण नहीं रहा, इसी अपेक्षा से भगवान "अच्युत" कहलाते हैं।

सुगतः—चतुर्गति रूप संसार भ्रमण से रहित हो परम शांतिमय पंचम गति को प्राप्त हुवे, इसीलिये "सुगत" कहलाये। अथवा आत्मा में तल्लीन होने से अथवा सम्यक् ज्ञान धारण करने से सुगत कहलाये।

ब्रह्माः—धर्म मार्ग के प्रवर्तक होने से अरहन्त भगवान ही ब्रह्मा हैं। और कोई जगत कर्त्ता ब्रह्मा यथार्थ

ब्रह्मा नहीं है ।

लोकान्तः—मोह का नाश कर के जन्म मरण रहित हो गये, अघातिया कर्मों का नाश कर के लोक के अन्त में सिद्ध क्षेत्र पर जा विराजमान हुवे, इस अपेक्षा से भी लोकान्त हैं। तथा लोक का अन्त कर दिया इस कारण से लोकान्त हैं।

लोक भूषणः—भगवान आप्त तीन लोक के भूषण हैं, तीन लोक के सिरताज हैं, जगत शिरोमणि हैं। तीन लोक का कोई प्राणी उनके समान नहीं है। इस लिये वे सर्व संसारी जीवों के आदर्श होने के कारण लोक भूषण हैं।

देव दुन्दुभि निर्घोषः—भगवान के समवसरण में इन्द्रादिक आकाश में साढ़े बारह किरोड़ जाति के वादित्रों (बाजों) को मधुर ध्वनि के साथ बजाते हैं, जिनके सुनने मात्र से समस्त क्षुधा तृषादिक रोग वेदना नष्ट हो जाते हैं।

सर्वज्ञः—भगवान अरहन्त सर्वज्ञ हैं, उनके केवल ज्ञान में लोकालोक के समस्त पदार्थ भूत भविष्यत् वर्तमान काल संबंधी अपने २ समस्त गुण पर्यायों सहित एक समय मात्र में युगपत झलकते हैं, इस लिये अरहन्त परमेष्ठी सर्वज्ञ हैं।

सर्वलोचनः—केवल दर्शन प्रभु ने प्राप्त किया है, दर्शनावरणीय कर्म को सर्वथा क्षय कर दिया है, जगत के

समस्त पदार्थों को युगपत् एक समय मात्र में उनके समस्त त्रिकाल सम्बन्धी गुण पर्याय सहित देखने वाले हैं इसी कारण सर्व लोचन हैं।

अच्छेद्यः—प्रभु चरम शरीरी हैं, सर्वोत्कृष्ट वज्र वृषभ नाराच संहनन् के धारक हैं उनके शरीर को कोई छेदने के लिये समर्थ नहीं, यदि कोई छेदने का प्रयत्न भी करे तो उनका शरीर छिद नहीं सकता और उनका आत्मा भी अछेद्य है, जिसे कोई छिन्न भिन्न नहीं कर सकता और न ही उनके गुणों की कोई हानि ही कर सकता।

अभेद्यः—इसी प्रकार प्रभु का शरीर अभेद्य है उसको कोई तीर से बर्छी भाले आदि किसी शस्त्र द्वारा भेद नहीं सकता, भगवान अविनाशी हैं, निश्चय नय से उनकी आत्मा अच्छेद्य है तथा अभेद्य है।

सूक्ष्मः—आत्मा एक अमूर्तिक द्रव्य है, इसी कारण इन्द्रिय अगोचर है, अनुभव द्वारा ही जाना जा सकता है, इस लिये सिद्ध परमात्मा जो सर्वथा कर्म फल रहित हो गये हैं "सूक्ष्म" हैं।

नित्यः—अरहन्त भगवान अविनाशी हैं, सदैव अपने पद में शाश्वत रहने वाले हैं। द्रव्य की अपेक्षा से धारा प्रवाह अपने गुण स्वभाव को अनादि काल से लिये हुवे हैं, और आगे अनन्त काल तक उसी में

स्थित रहेंगे। इसी लिये भगवान आप्त नित्य हैं।

निरंजनः—कर्म रूपी अंजन अर्थात् मैल से रहित होने के कारण भगवान आप्त निरंजन हैं।

ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्म, रागद्वेषादि भाव कर्म तथा शरीरादि नो कर्म को भगवान ने क्षय कर दिया है और अविनाशी मुक्त पद को प्राप्त कर के निकल परमात्मा हो गये हैं। इसी लिये निरंजन हैं।

अजरः—अरहन्त भगवान जरा रूपी रोग से सर्वथा रहित हैं इसी लिये अजर हैं, जब तक प्रभु परमौदारिक शरीर में रहते हैं, उनको कोई आधि व्याधि नहीं होती, न ही उनके इस शरीर में कोई बुढ़ापे का चिन्ह लेशमात्र दिखाई देता है, उनके शरीर की दिव्य सुन्दरताई बनी रहती है।

अमरः—भगवान मरण से रहित हो गये हैं, इसी लिये अमर कहलाये। आत्मा का एक पर्याय से छूट कर दूसरी पर्याय में जाने का नाम मरण है, प्रभु ने भव भ्रमण का सर्वथा अभाव कर दिया है, चार अघातिया कर्मों को नष्ट कर परम अविनाशी मोक्ष गति को प्राप्त होंगे, और कोई संसारी पर्याय चतुर्गति रूप संसार में धारण नहीं करेंगे इसी कारण भगवान अरहंत अमर हैं, मृत्यु को उन्होंने जीत लिया है।

शुद्ध सिद्धः—कर्म मल तथा क्रोधादि कषायों से रहित होने से भगवान शुद्ध हैं। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थों को भगवान सिद्ध कर चुके हैं अथवा मोक्ष होने का ही आपका मुख्य प्रयोजन था उसे प्राप्त कर सिद्ध हो गये हैं इसलिये भगवान आप्त ही सच्चे शुद्ध सिद्ध हैं।

निरामय—प्रभु का शरीर परमौदारिक है, उसके रोग नहीं, कोई किसी प्रकार की आधि व्याधि नहीं, उसमें पसीना नहीं आता, बात पित कफ आदि धातुओं से रहित होता है, इसी अपेक्षा से भगवान अरहंत निरामय हैं।

अक्षय—भगवान अरहन्त अजर अमर हैं, अविनाशी हैं, सर्वथा क्षय रहित हैं जो गुण उनकी आत्मा में प्रकाशमान हुवे वे ध्रुव हैं, क्षय रहित हैं। इसी लिये भगवान अरहन्त अक्षय हैं।

अव्यय—अपने द्रव्य स्वभाव से अरहंत भगवान कभी रहित नहीं होते, उनके गुण अविनश्वर हैं, कभी नाश रूप तथा कम ज्यादह नहीं होते। इसी अपेक्षा से भगवान अव्यय हैं।

शान्तः—क्रोधादि कषायों का भगवान ने सर्वथा अभाव कर दिया है। परम वीतरागता को प्राप्त हुवे हैं,

प्रभु ने ध्यान के प्रताप से अपने समस्त पापों की शान्ति की तथा जो जीव आपकी शरण में जाते हैं उनको आप के द्वारा शान्ति प्राप्त हो जाती है, आप सर्व रक्षकों में परम शरण हैं, संसार दुःखों से त्रसित जीवों को दुःख से छुड़ा सर्वथा निर्भय बना परम शान्ति मय पंचम गति प्राप्त कराने में निमित्त हैं इसी लिये अरहन्त भगवान ही सार्थक शान्त हैं।

शान्ति कल्याणकारकः—स्वयं कर्मों को क्षय कर के प्रभु ने परम मोक्ष पद को प्राप्त किया अपनी निज आत्मा का कल्याण किया, आपके गुणों का चिंतवन करने से, स्मरण करने से तथा आपकी स्तुति करने से मुमुक्षुओं को स्वयम् शान्ति मिल जाती है। प्रभु तो स्वयम् वीतराग हैं उनको किसी से राग नहीं द्वेष नहीं स्तुति करने से किसी से प्रसन्न नहीं होते, परन्तु भक्त जनों के परिणामों में से रागादि मैल दूर करने के लिये तथा वैराग्य भाव जाग्रत करने के लिये प्रभु का गुण स्मरण, नाम जपन, प्रभु की शांत मुद्रा का दर्शन तथा ध्यान सब परिणामों की शुद्धि तथा शान्ति लाभ के निमित्त कारण हैं जैसे ठंडे हवा के झोंकों वाले समन्दर के बिना चाहे भी जो उसके तट पर जाता है, उसको उन ठंडे हवा के झोंकों के लगने से स्वयम् ठंडक पहुंच जाती है और शान्ति मिलती है,

ठीक उसी प्रकार सच्चे भक्तों को भी प्रभु के वीतराग रहते हुवे भी सुख शान्ति की प्राप्ति हो जाती है। इसी अपेक्षा से भगवान अरहन्त "शान्ति कल्याण कारक" कहे गये हैं। जैसा कि कहा है:—

"तुम नाम शान्ति स्वरूप शान्ति सुकरण समरथ जगपती।
वसु कर्म मेरे शान्त करदो शान्ति मय पंचम गती" ॥

स्वयंम्भू—भगवान अरहन्त ही सच्चे स्वयम्भू हैं वे अपने आप दूसरों के उपदेश बिना ही मोक्ष मार्ग को समझ कर और उसको धारण कर अनंत ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनंत सुख, अनंत वीर्य इन चार अपूर्व गुणों के स्वामी परमात्मा हो गये।

भगवान तीर्थंकर जन्म से ही मति श्रुति अवधि इन तीन सम्यक् ज्ञान के धारी होते हैं, उनको किसी से उपदेश सुनने की आवश्यकता नहीं होती, वे अपने गुरु आप ही होते हैं, ऐसे परम ज्ञानी महात्मा तीर्थंकर भगवान स्वयं ही अपने आत्मध्यान के बल से अरहन्त पद प्राप्त करते हैं और जीवन मुक्त परमात्मा हो जाते हैं, केवल ज्ञान प्रगट हो जाता है जिससे समस्त अज्ञान अन्धकार का नाश हो जाता है, सर्व पदार्थ एक साथ अपने अनंत गुण पर्याय सहित उसमें झलकते हैं, तब भगवान इन्द्र द्वारा रचित समवसरण में परम शोभा को लिये हुवे अपने ध्यान-

मई परम वीतराग शरीर की योग मुद्रा से, परम शान्त रस से परिपूर्ण आत्मानन्द में मग्न सिंहासन पर अन्तरीक्ष अष्ट प्रातिहार्य सहित विराजमान होते हैं। फिर भगवान के शेष चार अघातिया कर्म भी जब नष्ट हो जाते हैं तो वे अरहन्त परमात्मा सिद्ध परमात्मा हो जाते हैं। क्योंकि तीर्थंकर भगवान स्वयं धर्म पुरुषार्थ का साधन कर मोक्ष पुरुषार्थ को सिद्ध करते हैं वे ही सच्चे स्वयंभू हैं। और भी कई अपेक्षा से भगवान स्वयंभू कहलाते हैं। अपने आप उत्पन्न हुवे, अथवा बिना गुरु के अपने आप समस्त पदार्थों के जानने वाले हैं, अथवा अपने ही आत्मा में स्थित रहते हैं, अथवा अपने आप ही अपना कल्याण किया हैं, अथवा अपने ही गुणों से स्वयम् वृद्धि को प्राप्त हुवे हैं, अपने आप केवल ज्ञान और केवल दर्शन के द्वारा समस्त लोकालोक में व्याप्त हो रहे हैं व भव्य जीवों को मोक्ष रूपी संपत्ति देने वाले हैं वा समस्त द्रव्य पर्यायों को आप देख जान सकते हैं अथवा ध्यानी ज्ञानी योगीश्वरों को आप प्रत्यक्ष दिखाई पड़ते हैं, अथवा लोक शिखर पर आप अपने आप जा कर विराजमान होते हैं इसलिये भगवान आप्त ही सच्चे स्वयंभू हैं, अन्य कोई व्यक्ति स्वयंभू नहीं हो सकता। (देखो श्लो० २२)

विश्व दृश्वा—समस्त लोक अलोक को देखने से

भगवान अरहन्त विश्व दृश्वा कहलाते हैं। भगवान ने दर्शनावरणीय कर्म को नाश कर केवल दर्शन को प्राप्त किया, जिस से प्रभु जगत के समस्त पदार्थों को उन के समस्त गुण पर्यायों सहित एक साथ एक समय मात्र में देख लेते हैं इसी से वे सच्चे विश्व दृश्वा हैं।

कुशलः—जगत के समस्त प्राणियों के हित कर्ता होने से अरहन्त भगवान ही कुशल हैं। जो भगवान की दिव्य ध्वनि द्वारा उन के परम उपदेश को सुनता है, वह अपने आत्म हित को करता है उसके क्षेम कुशल होती है इसी से भगवान अरहन्त कुशल हैं।

पुरुषोत्तमः—त्रेशठ शलाका पुरुषों में सर्वोत्कृष्ट होने से भगवान अरहन्त ही पुरुषोत्तम हैं, वे जगत वन्द्य हैं सुर नर आदि सब ही जीव उन के चरणों में मस्तक झुका उन का गुणानुवाद करते हैं, वे अनन्त गुणों के स्वामी हैं, उन के बहिरङ्ग तथा अन्तरङ्ग की विभूति की कोई तुलना नहीं कर सकता अनन्त चतुष्टय के धारी हैं, इस लिये वे अरहन्त परमात्मा ही पुरुषोत्तम हैं अन्य और कोई व्यक्ति पुरुषोत्तम नहीं है।

**नामाष्टक सहस्रेणयुक्तं मोक्ष पुरेश्वरं।**
**ध्यायेत परमात्मानं मोक्षसौख्यप्रदायकं॥५५॥**

अन्वयार्थ—(नामाष्टकसहस्रेण)एकहजार आठ नामों

से (युक्तं) सहित (मोक्षपुरेश्वरं) मोक्ष नगर के स्वामी (मोक्षसौख्यप्रदायकं) मोक्ष के आनन्द को देने वाले (परं-आत्मानं) परमात्मा को (ध्यायेत्) ध्यान करना चाहिये

**शुद्धस्फटिक संकाशं स्फुरन्तं ज्ञान तेजसा ।**
**गणैर्द्वादशभिर्युक्तं ध्यायेदर्हन्तमक्षयम् ॥५३॥**

अन्वयार्थ—(शुद्धस्फटिकसंकाशं) शुद्ध स्फटिक मणी के समान चमकते हुये शरीर को रखने वाले (ज्ञान तेजसा स्फुरन्तं) अन्तरङ्ग में ज्ञानरूपी तेज से प्रकाश करने वाले (द्वादशभिर्गणैः युक्तं) बारहसभाओं से युक्त (अक्षयं) ऐसे अविनाशी (अरहन्तं) अरहन्त को (ध्यायेत) ध्यान करना चाहिये ।

**सिंहासन सितच्छत्र चामरादि विभूतिभिः ।**
**युक्तं मोक्ष पुरं देवं ध्यायेन्नित्य अनाकुलम् ॥५७**

अन्वयार्थ—(सिंहासन सितच्छत्र चामरादि विभूतिभिः) सिंहासन,सफेद छत्र, चौंसठ चमरआदिक विभूतियों सहित (नित्यं) अव्यय (अनाकुलं) आकुलता रहित (मोक्ष पुरं देवं) मोक्ष नगर के नाथ अरहन्त देव का (ध्यायेत) ध्यान करना चाहिये ।

**कल्याणातिशयैराढ्यो नवकेवल लब्धिमान् ।**
**समस्थितो जिनो देवः प्रातिहार्यपतिः स्मृतः ५८**

अन्वयार्थ---(कल्याणातिशयैः आढ्यः) पंच कल्याणकों के अतिशय से शोभायमान् (नव केवल लब्धिमान् ) नव केवल लब्धियों को रखने वाले (समस्थितः) समोशरण में स्थित अथवा समभाव में रहने वाले (प्रतिहार्य पतिः) आठ प्रतिहार्य के स्वामी ( जिनः देव ) श्री जिनदेव (स्मृतः) कहे गये हैं।

भावार्थ---आचार्यवर भव्य पुरुषों को शिक्षा देते हैं कि उन्हें एक हजार आठ नाम संयुक्त, मोक्ष नगर के स्वामी तथा मुमुक्षुओं को मोक्ष का आनन्द प्रदान करने वाले परमात्मा का ध्यान करना चाहिये। बड़े२ महान विद्वान आचार्यों ने प्रभु की एक हजार आठ नामों से स्तुति की और उन के द्वारा प्रभु के गुणों का स्तवन किया है, जो पुरुष इन नामों का ध्यान करता है उस की स्मरण शक्ति बहुत पवित्र होजाती है, उस के पापों का क्षय होता है, गुणों की वृद्धि होती है, कहा है।

जपै जाप ताके कहा दोष लागें,
धरै ध्यान ताके सबै पाप भाजें।

यद्यपि वाणी द्वारा एक हजार आठ नाम स्वामी के कहे जाते हैं, तथापि प्रभु का यथार्थ स्वरूप कहने को कोई समर्थ नहीं हैं वास्तव में प्रभु के समस्त गुण वाणी के अगोचर हैं। ऐसा होते हुए भी प्रभु की स्तुति करनेवाला, उनका

गुणानुवाद करने वाला पुरुष निसंदेह अभीष्ट फल की प्राप्ति कर लेता है । भक्तामर स्तोत्र में कहा है ।

"तुम गुण महिमा हत दुख दोष, सो तो दूर रहो सुख पोष।
पाप विनाशक है तुम नाम, कमल विकाशी ज्यों रविधाम"
नहीं अचम्भ जो होहि तुरन्त, तुमसे तुम गुण वर्णत संत ।"

हे प्रभु ! आपकी स्तुति तो सर्व रागादि दोषों को दूर करने वाली है, आप की तो बात ही क्या ? वह तो दूर रही आप का नाम मात्र ही जीवों के पापों को नाश कर डालता है । सूर्य की किरणों का प्रकाश तो दूर ही रहा सूर्य के निकलने से पहिले उस का थोड़ा सा ही कुछ उजाला सरोवरों के अन्दर कमलों को प्रफुल्लित कर देता है । स्वामी इस में कोई अचम्भे की बात नहीं है कि जो संत गण आप के गुणों का स्मरण करते हैं वे भी कर्मों को काट आप सारिखे परमात्मा स्वयं हो जावें । प्रभु का नाम आत्म सिद्धि करने में तथा नाम लेने वाले के इष्ट प्रयोजन की सिद्धि करने में परम सहायक है, यद्यपि प्रभु वीतराग होने के कारण भक्त जन पर लेश मात्र भी अनुग्रह नहीं करते तथापि आप के नाम व गुण स्मरण में वह शक्ति है कि बिना प्रभु की आत्मा के दखल दिये ही भक्त जनों का पाप कट जाता है, पुण्य का संचय होता है तथा आत्मानुभव की जागृति का निमित्त होजाता

है परंपरा से प्रभु द्वारा प्रतिपादित रत्न त्रय रूपी मोक्ष मार्ग पर चल कर अरहन्त परमात्मा के समान अपना कर्म कलङ्क मिटा कर स्वयं परमात्मा बन जाता है। इस लिये मोक्षार्थियों को अरहन्त परमेष्ठि का ध्यान करना, उनका आराधन करना उचित है।

मोहनीय कर्म का नाश हो जाने पर बारहवें क्षीण मोह गुण स्थान में केवली भगवान का शरीर साधारण औदारिक से परमौदारिक हो जाता है, जो सप्त धातुओं से रहित होता है। जैसे शुद्ध निर्मल स्फटिकमणि की तथा कर्पूर की प्रतिमा होती है, वैसे ही तपश्चरण के बल से प्रभु का शरीर शुद्ध हो जाता है। प्रभु के शरीर की छाया नहीं पड़ती, नख केश नहीं बढ़ते, आंखों की पलक नहीं झपकती। जन्म मरण जरा आदि अठारह दोष स्वामी के नहीं होते।

प्रभु के अन्तरंग में केवल ज्ञान रूपी सूर्य का अद्भुत प्रकाश हो रहा है। इस प्रकार स्वामी अपने परमौदारिक दिव्य शरीर में स्थित, अन्तरंग में केवल ज्ञान रूपी सूर्य के प्रकाश को लिये हुवे समवसरण के मध्य में वेदी के ऊपर सिंहासन पर अन्तरीक्ष विराजमान होते हैं वेदी के चारों ओर प्रदक्षिणा रूप से बारह सभायें होती हैं उन में देवतागण, मनुष्य आदि भव्य जीव बैठे होते हैं प्रभु का

मुख पूर्व दिशा की ओर होता है, परन्तु प्रभु की अतिशय के बल से चारों दिशाओं में चार मुख देखने वालों को दिखाई पड़ते हैं। बारह सभाओं में क्रमशः भव्य जीव इस प्रकार बैठते हैं:—

१—गणधरादि ऋषिगण तथा मुनिराज
२—कल्प वासी देवों की देवांगनायें
३—अर्जिकायें और मनुष्यों की स्त्रियां
४—ज्योतिष्क देवों की देवाङ्गनायें
५—व्यंतर देवों की देवांगनायें
६—भवन वासी देवांगनायें
७—भवन वासी देव
८—व्यन्तर देव
९—ज्योतिष्क देव
१०—कल्प वासी देव
११—चक्रवर्ति आदि राजा महाराजा तथा साधारण मनुष्य
१२—तिर्यंच समुदाय

इस प्रकार ये जीव प्रभु की भक्ति के भार से नम्रीभूत हो कर भगवान के चारों ओर ऊपर लिखे क्रम से इन बारह सभाओं में बैठते हैं, और भगवान की वाणी सुनने की प्रतीक्षा करते रहते हैं। प्रभु की वाणी निरक्षरी होती है, समस्त जीव अपनी २ भाषा में उसको समझ

लेते हैं और अपना कल्याण करते हैं।

इन्द्र द्वारा रचित समवसरण में प्रभु की बहिरंग की विभूति के सूचक अष्ट प्रातिहार्य होते हैं, अशोक वृक्ष, सिंहासन, चँवर, छत्र त्रय, दुन्दुभि वादित्र, पुष्प वृष्टि प्रभा मंडल, दिव्य ध्वनि।

प्रभु के समीप ही अशोक वृक्ष होता है—ऊंचे हरे भरे अशोक वृक्ष के नीचे प्रभु का सुवर्ण समान उज्वल रूप ठीक उसी प्रकार सुन्दर मालूम होता है जिस प्रकार श्यामवर्ण मेघ माला के नीचे सूर्य का मंडल शोभायमान होता है।

सिंहासन — गंध कुटी के बीच में एक बहुमूल्य रत्न जड़ित स्वर्णमयी सिंहासन होता है, जिस पर प्रभु अन्तरीक्ष विराजमान होते हैं, उदयाचल की चोटी पर जैसे सूर्य विम्ब सुन्दर मालूम पड़ता है, वैसा ही रत्न जड़ित सिंहासन पर प्रभु का मनोहर शरीर शोभायमान होता है।

चँवर—प्रभु के शीस पर इन्द्रादिक देव चौसंठ चँवर ढोरते हैं। जिस समय देवगण सफेद उज्वल चँवर ढोरते हैं तो उस समय प्रभु का परमौदारिक शरीरक महा कान्ति का धारक ऐसा सुशोभित होता है मानों सुमेरु पर्वत का शिषर ही है जिससे अनेक जल के निर्झरने ही पड़ रहे हैं।

छत्रः—प्रभु के मस्तक पर तीन छत्र होते हैं, मानों यह छत्र साक्षात् यही प्रगट कर रहे हैं कि प्रभु तीन लोक के स्वामी हैं। इन तीन छत्रों से सुशोभित प्रभु का महा उज्वल शरीर ऐसा सुशोभित होता है मानों तीन रूप धारण किये हुवे चंद्रमा से शोभायमान मेरु पर्वत ही शोभायमान हो रहा हो।

दुन्दुभिः—आकाश में व्याप्त होने वाले देव दुन्दुभियों के शब्दों की भारी आवाज़ होती है। प्रबल वायु के आघात से क्षुभित समुद्र के गंभीर शब्द के समान, वीणा बन्शी आदि सुन्दर बाजों के साथ ताल युक्त दुन्दुभी ध्वनि करती है, उस समय ऐसा प्रतीत होता है कि मानों दुन्दुभि बाजा प्रभु की "जय ध्वनि" करता हुआ प्रभु का सुयश ही प्रगट कर रहा है।

पुष्प वृष्टिः—चारों ओर से प्रभु के शरीर पर उन्मत्त भौंरों से युक्त मंदार, कुन्द, रात्रि विकाशी कमल नील कमल, श्वेत कमल, मालती आदि अनेक सुगन्धित पुष्पों की वृष्टि सुगन्धित जल और मन्द२ वायु के साथ होती है, उस समय प्रभु का शरीर ऐसा जान पड़ता है मानों कल्प वृक्षों से गिरे हुये पुष्पों से शोभायमान मेरु पर्वत ही हो।

प्रभा मंडलः—अचानक एक साथ हज़ारों सूर्योदय के समान दिन रात के भेद का नाशक प्रभु का भामंडल

( Halo ) अति प्रकाशित होता है। यद्यपि प्रभु के शरीर की आभा सूर्य से भी अधिक तेज रखती है, तथापि वह सूर्य के समान सन्ताप देने वाली नहीं है, चन्द्र प्रभा की तरह शीतल भी है।

दिव्य ध्वनिः—प्रभु की दिव्य ध्वनि समस्त प्राणियों को प्रसन्न करने वाली है, गंभीर शब्द सहित है, संदेह रहित धर्म रूपी अमृत की बर्षा करने वाली है, स्वर्ग और मोक्ष का मार्ग बताने वाली है सर्व भाषाओं में परिणमन रूप है।

प्रभु के पंच कल्याणक होते हैं, गर्भ कल्याणक, जन्म कल्याणक, तप कल्याणक, ज्ञान कल्याणक, तथा निर्वाण कल्याणक, स्वर्गीय कवि रूपचन्द जी ने कहा है
"प्रभु पंच कल्याणक विराजित, सकल सुर नर ध्यावहीं।
त्रैलोक्य नाथ सुदेव जिन वर, जगत मंगल गावहीं" ॥

(पंच कल्याणक, देखो टीका श्लोक ३२)

प्रभु के नौ केवल लब्धियों की प्राप्ति होती है, तेरहवें गुण स्थान में चारों ही घातिया कर्मों का अभाव हो जाने से अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त दान, अनन्त लाभ, अनन्त भोग, अनन्त उपभोग, अनन्त वीर्य, क्षायिक सम्यक् दर्शन क्षायिक चरित्र ये नौ केवल लब्धिया प्रगट हो जाती हैं।

यद्यपि यह सब अद्भुत विभूतियें प्रभु को प्राप्त होती हैं तथापि प्रभु को इन से कोई राग नहीं है वे तो पूर्ण वीतरागता को लिये हुवे हैं, स्वामी ने मोह कर्म को सर्वथा विध्वंश कर डाला है, इसी लिये पूर्ण वीतराग हैं, प्रभु को अपने शरीर ही से राग नहीं, स्वामी की वीतरागता अद्भुत है। इन्द्र अपनी भक्ति से समवसरण की रचना करता है, स्वामी को उस से कुछ प्रयोजन नहीं प्रभु राग विहीन हैं, परिग्रह का संबंध उनसे कैसे संभव होसकता है।

प्रभु के न कोई इच्छा है, न कोई परिग्रह है, न कोई चिंता, भय, आशा ही है, वे तो परम समता भाव के स्वामी हैं, अपने ही शुद्ध चिदानंद रूप में स्थित हैं, तीर्थंकर नामा कर्म प्रकृति के उदय से अष्ट प्रातिहार्य आदि सब बहिरंग की विभूति उनके होती है, परन्तु वे उस से परम उदासीन हैं उनके आत्मा रूपी समुद्र को रागद्वेष की कल्लोलें क्षोभित करने में सर्वथा असमर्थ हैं।

बहु थुति करे हर्ष नहीं होय, निंदे दोष गहै नहिं कोय।
समता सुधा कोप विष नाश, द्वादशांग वाणी परकाश" ॥

आचार्य वर ने अरहन्त परमेष्ठी के ध्यान करने का उपदेश दिया है। अरहन्त भगवान चारों घातिया कर्मों को नष्ट कर सर्वथा निर्दोष हो गये हैं, अनन्त गुण संयुक्त हैं, उनका गुणानुवाद वाणी के अगोचर है। उनका ही

ध्यान करना उत्तम श्रेष्ठ फल को देने वाला है। अरहंत भगवान अनन्त सुख रूप परमात्मा, परम पूज्य परमेश्वर, अनन्त गुण मंडित, कोट सूर्य समान उद्योत के धारक, अनेक अतिशयों सहित अनन्त चतुष्टय सहित विराजमान हैं, ऐसे अरहन्त परमात्मा के स्वरूप का ध्यान करना रूपस्थ ध्यान है, जो पुरुष वीतराग परिणामों के साथ वीतराग प्रभु का स्मरण करता है, उनका गुण गान करता है, वह कर्म बन्धनों से छूटता है, संसार समुद्र से पार हो परम सिद्ध पद को प्राप्त होता है। अरहन्त भगवान के गुणों का स्मरण कर उनके परम वीतराग स्वरूप में ही अपने मन को जोड़ देवें, बार २ देख कर उन में प्रेमालु हो जावें, ऐसा विचारते २ द्वैत भाव से अद्वैत में आजावें अर्थात् अपने आत्मा को ही सर्वज्ञ तथा अरहंत मानने लग जावें, कहा भी है:—

"एवं देवः स सर्वज्ञः सोहं तद्रूपतां गतः।
तस्मात्स एव नान्योहं विश्व दर्शीति मन्यते" ॥

जिस समय ध्याता सर्वज्ञ स्वरूप अपने को देखता है, उस समय ऐसा मानता है कि जो देव है वही मैं हूं, जो सर्वज्ञ है वही मैं हूं, जो आत्म स्वरूप में है वही मैं हूं, मैं अन्य कोई नहीं हूं, इस प्रकार मैं ही साक्षात् अरहन्त स्वरूप वीतराग परमात्मा हूं। ऐसी भावना करके उसी

में स्थिर हो जावे, यह अरहन्त के स्वरूप के द्वारा निज आत्मा का ध्यान है, इसी को रूपस्थ ध्यान कहते हैं। पंडित जयचन्द जी ने भी ऐसा ही दर्शाया है:—

सोरठा—सर्व विभव युत जान, जे ध्यावैं अरहंत कूं।
मन वश कर सत मान, ते पावैं तिस भाव कूं॥

नोट—यहां पर अरहन्त तथा तीर्थंकर का अन्तर दिखा देना उपयोगी होगा, ताकि पाठकों को पुस्तक के समझने में सुभीता रहे, तीर्थंकर भगवान और सामान्य केवली दोनों ही अरहन्त होते हैं, तीर्थंकर नाम कर्म एक विशेष पुण्य प्रकृति है। जो महात्मा दर्शन विशुद्धि आदि षोडश कारण भावनाओं को उत्तम प्रकार से ध्याय कर तीर्थंकर नाम कर्म को बांधते हैं, वेही तीर्थंकर केवली होते हैं। ऐसे तीर्थंकर की संख्या परिमित होती है। भरत तथा ऐरावत क्षेत्र में प्रत्येक अवसर्पिणी व उत्सर्पिणी काल में चौवीस २ होते हैं। विदेहों में सदैव ही विराजमान रहते हैं। वहां कम से कम बीस, अधिक से अधिक एक सौ साठ होते हैं। भरत व ऐरावत के तीर्थंकरों के गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, निर्वाण, पांचों कल्याणक उत्सव इन्द्रादि देव करते हैं, क्यों कि वे पहले ही तीर्थंकर कर्म बांधते हुए गर्भ में आते हैं। विदेहों में कोई २ महात्मा श्रावक पद में कोई २ साधु पद में तीर्थंकर कर्म बाँधते हैं।

इसलिये वहां किसी के तप, ज्ञान निर्वाण तीन व किसी के ज्ञान निर्वाण दो ही कल्याणक होते हैं । तीर्थंकरों के विशेष पुण्य कर्म का विपाक होने के कारण समवसरण की विशाल रचना होती है, सामान्य केवली के केवल गंध कुटी होती है । सर्व ही अरहन्तों के अठारह दोष नहीं होते व शरीर परमौदारिक सप्त धातु रहित स्फटिक के समान निर्मल होजाता है, उनके शरीर की छाया नहीं पड़ती नख केश नहीं बढ़ते ।

**सर्वज्ञः सर्वदृक् सार्वो निर्मलो निष्कलोऽव्ययः**
**वीतरागः पराध्येयो योगिनां योगगोचरः ।५९**

अन्वयार्थ—अरहन्त भगवान (सर्वज्ञः) सर्वज्ञ हैं (सर्वदृक्) सर्वदर्शी हैं (सार्वः) सर्व जीवों के हितकारी हैं (निर्मलः) कर्म मल से रहित हैं (निष्कलः) शरीर से रहित हैं (अव्ययः) अविनाशी हैं (वीतराग) रागादिक से रहित हैं (पराध्येयः) परम ध्यान करने योग्य हैं (योगिनां योग गोचरः) योगियों के ध्यान में आने योग्य हैं। यहां आत्मा को लक्ष्य करके विशेषण दिये गए हैं ।

**सर्वलक्षणसम्पूर्णं निर्मले मणिदर्पणे ।**
**संक्रान्त बिम्ब सादृश्यं शान्तं संचेतयेऽद्भुतं ।६०।**

अन्वयार्थ—अरहन्त भगवान (सर्व लक्षण सम्पूर्ण)

सर्व लक्षण (१००८ लक्षण) से परिपूर्ण हैं (निर्मले मणि दर्पणे) निर्मल मणि के दर्पण में (संक्रान्त विम्ब सादृश्यं) चमकते हुये विम्ब के समान हैं (शान्तं) परम शान्त हैं अद्भुतं आश्चर्यकारी हैं (संचेतये) मैं ऐसा अनुभव करता हूं

येन जितं भवकारणसर्वं,
मोहमलं कलिकाममलं च ।
येन कृतं भव मोक्षसुतीर्थं,
सोऽस्तु सुखाकरसुतीर्थसुकर्ता ॥६१॥

अन्वयार्थ—(येन) जिस अरहन्त भगवान ने (भव कारण सर्वं) संसार के सब कारणों को (मोहमलं) मोह रूपी मल को (च) और (कलिकाममलं) मलीन काम रूपी मल को (जितं) जीत लिया है। (येन) जिस अरहन्त भगवान ने (भवमोक्षसुतीर्थं) संसार के नाश करने वाले तीर्थ रूपी धर्म को (कृतं) प्रकाश किया है (सः) वह (सुखाकरतीर्थ सुकर्ता) सुख की खान तीर्थंकर भगवान (अस्तु) हैं

क्षीणचिरंतनकर्मसमूहो,
निष्ठितयोगसमस्तकलापः ।
कोमलदिव्यशरीरसुभासः,
सिद्धिगुणाकरसौख्यनिधिश्च ॥६२॥

अन्वयार्थ---(क्षीण चिरंतन कर्म समूहः) जिस ने अनादि काल के कर्म समूह को क्षय कर दिया है (निष्ठित योग समस्त कलापः) और योगाभ्यास की पूर्णता को प्राप्त कर लिया है (कोमल दिव्य शरीर सुभासः) जो कोमल दिव्य शरीर में प्रकाशमान है (सिद्धि गुणाकर सौख्यनिधिः) जिसने गुणों की खान और परम सुख की निधि को सिद्ध कर लिया है वही अरहन्त परमात्मा है,

निष्कलबोधविशुद्धसुदृष्टिः,
पश्यति लोकविभाव स्वभावम् ।
सूक्ष्मनिरञ्जनजीव जिनोऽसौ,
तं प्रणमामि सदा परमाप्तम् ॥६३॥

अन्वयार्थ—( निष्कल बोध विशुद्ध सुदृष्टिः ) जो निर्मल ज्ञान और निर्मल दर्शन के धारी हैं (लोक विभाव स्वभावं) तीन लोक के पदार्थों के विभावों और स्वभावों को (पश्यति) देखते हैं (असौ:) वे (सूक्ष्मनिरंजन जीव जिनः) सूक्ष्म हैं, निरंजन हैं, सदा जीने वाले हैं, और जिनेन्द्र हैं (तं परमाप्तम्) उस परम आप्त अरहन्त देव को ( सदा प्रणमामि) सर्व काल नमस्कार करता हूं ।

क्षपितदुरितपक्षक्षीणनिःशेषदोषो
भवमरणविमुक्तः केवलज्ञानभानुः

परहृदयमतार्थ ग्राहक ज्ञानकर्ता
ह्यमलवचन वक्ता भव्य बन्धु जिनाप्त ॥ ६४ ॥

अन्वयार्थ—(क्षपितदुरितपक्षक्षीणनिःशेषदोषो) जिसने समस्त असत् पक्ष को नाश कर दिया है और जो सम्पूर्ण दोषों से रहित है (भव मरण विमुक्तः) जन्म मरण से रहित है (केवलज्ञानभानुः) केवल ज्ञान मयी सूर्य है (परहृदयमतार्थग्राहकज्ञानकर्ता) दूसरों के मन में समस्त पदार्थोंके ज्ञान का धारी है (हि) जो निश्चय से (अमल वचनवक्ता) निर्मल वाणी का प्रकाशक हैं ( भव्य बन्धु ) भव्यों के हितकारी बन्धु हैं (जिनाप्तः) ऐसे जिनेन्द्र आप्त हैं ।

भावार्थ—जैन धर्म का यह सिद्धान्त है कि यह जीवात्मा स्वभाव से ही अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनंत सुख, तथा अनन्त वीर्यादि अनन्त शक्तियों का आधार है, परन्तु अनादि कर्म मल से मलीन होने के कारण इसकी वे समस्त शक्तियां आच्छादित हो रही हैं, कर्मों के फल से वेष्टित हैं, और यह आत्मा संसार में इतना लिप्त और मोह जाल में इतना फंसा हुआ है कि उन शक्तियों का विकाश होना तो दूर रहा, उनका स्मरण तक भी इसको नहीं होता, कर्म के किंचित क्षयोपशम से जो कुछ थोड़ा बहुत ज्ञानादि लाभ होता है, यह जीव उतने ही में संतुष्ट होकर उसी को अपना स्वरूप मानने

लगता है। इन्हीं संसारी जीवों में से जो जीव, अपनी आत्म निधि की सुध पा कर धातु भेदी के सदृश प्रशस्त ध्यानाग्नि के बल से समस्त कर्म मल को दूर कर देता है, उस से आत्मा की वे सम्पूर्ण स्वाभाविक शक्तियें सर्वतो भाव से विकसित हो जाती हैं और तब वह आत्मा स्वच्छ तथा निर्मल होकर परमात्म दशा को प्राप्त हो जाता है और परमात्मा कहलाता है। केवल ज्ञान की प्राप्ति होने के पश्चात् जब तक देह का सम्बन्ध बाकी रहता है तब तक परमात्मा को सकल परमात्मा, जीवन्मुक्त तथा अरहन्त कहते हैं और जब देह का सम्बन्ध भी छूटजाता और मुक्ति की प्राप्ति हो जाती है तब वही सकल परमात्मा निष्कल परमात्मा विदेह मुक्त और सिद्ध नामों से विभूषित होता है इस प्रकार अवस्था भेद से परमात्मा के दो भेद कहे जाते हैं। यह परमात्मा अपनी जीवन्मुक्तावस्था में अपनी दिव्य वाणी के द्वारा, संसारी जीवों को उनके आत्मा का स्वरूप और उसकी प्राप्ति का उपाय बतलाता है। उसके उपदेशामृत का पान कर अनेक भव्य जीव अपना आत्म कल्याण करते हैं इसी अपेक्षा से स्वामी सार्व, परम हितोपदेशक, परम हितैषी इत्यादि अनेक नामों से पुकारे जाते हैं।

आत्मा शुद्ध निश्चय नय से सर्वज्ञ है, सर्व दृक् है,

सार्व है, निर्मल है, निष्कल है, अव्यय है, वीतराग है, परम ध्यान करने योग्य है, योगीश्वरों द्वारा ध्यान में आने योग्य है। यह सब विशेषण अरहन्त भगवान के ही हैं, अरहन्त भगवान का आत्मा चार घातिया कर्मों का नाश हो जाने से परमात्मा रूप हो गया है, यह गुण पूर्ण रूप से उसमें विकसित हो रहे हैं। आत्मा निश्चय नय से नित्य ही कर्मों के लेप से रहित है, इसी कारण निर्लेप है, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन संयुक्त है, इसी से सर्वज्ञ है, सर्वदृक् है, हितोपदेश द्वारा सब जीवों का कल्याण करने की अपेक्षा सार्व हैं, अपने निज स्वरूप में स्थित है उस से कभी विचलित नहीं होता, इसी अपेक्षा से अव्यय है, यह आत्मा निश्चय नय से शुद्ध चिदानंद रूप है, न इस में राग है, न द्वेष है, यह सब विभाव परिणति हैं, अरहन्त भगवान इस परिणति से सर्वथा रहित हैं, इसलिये वे ही वीतराग हैं, आत्मा पुद्गल के गुण स्पर्श, रस, गंध, वर्ण से सर्वथा रहित है, पुद्गल से भिन्न अमूर्तिक है। यह आत्मा शुद्ध ज्ञान चेतना मय सर्व पुद्गलादि द्रव्यों से भिन्न लक्षण को रखने वाला है, यह इन्द्रियों द्वारा देखा नहीं जा सकता। यह आत्मा अपने ही वीतराग स्वसंवेदन ज्ञान द्वारा ही जाना जाता है, योगीश्वरों के ध्यान गोचर है। अरहन्त प्रभु की आत्मा

परम स्वच्छ है, निर्मल है यह गुण उस में पूर्ण रूप से प्रकाशमान हो रहे हैं। तीर्थंकर प्रभु के शरीर की महिमा अद्भुत है, एक हज़ार आठ लक्षण संयुक्त प्रभु का शरीर होता है, वे परम शांत हैं, उनका शरीर परमौदारिक है, जो शुद्ध स्वच्छ निर्मल स्फटिक के समान प्रकाशमान है, ज्ञान रूपी तेज जिनके अन्तरंग में झलक रहा है, ऐसे अरहन्त परमेष्ठी ध्यान करने योग्य हैं वे ही देवाधिदेव हैं।

चतुर्गति रूप संसार में परिभ्रमण कराने वाले मुख्य कारण मोह और काम हैं, अनादि काल से जीव का महान शत्रु मोहनीय कर्म है, यही इस संसारी प्राणी को रागी द्वेषी मोही बना कर आत्म विरोध मार्ग में पटक देता है। उसी का भुलाया हुआ यह जीव अपने आत्म स्वरूप में स्थिरता को प्राप्त नहीं होता। इसके साथी क्रोधादि चार कषाय हैं, इन्ही के कारण यह जीव ज्ञानावरणादि आठ कर्मों का बन्ध करता है और उस कर्म के उदय वश संसार बन में भटकता फिरता है। इस मोह को जीतना ही मानों सब कर्मों को जीत लेना है, प्रभु ने इस मोह कर्म को सर्वथा क्षय कर डाला, प्रभु क्षीण मोह बीत राग यथा ख्यातसंयमी होगये इसी कारण मोह के विजेता सच्चे जिन कहलाये।

प्रभु ने काम रूपी योद्धा को भी जीत लिया बड़े २ इन्द्र धरणेन्द्र, चक्रवर्ती आदि जगत के प्राणी काम के आधीन हो संसार रूपी समुद्र में चिरकाल तक गोते खाया करते हैं, प्रभु ने उसे भी परास्त कर दिया, प्रभु की महिमा अद्भुत है, मोह और काम ये हो दोनों संसार भ्रमण के मुख्य कारण हैं इन्हें प्रभु ने जीत लिया, मानो स्वामी अब भव भ्रमण से सर्वथा रहित हो गये।

प्रभु के उपदेश से सरल परिणामी भव्य जीव तो मोक्ष मार्ग को प्राप्त करते ही हैं, परन्तु बड़े २ कट्टर एकान्त वादी तपस्वी भी आप के अद्भुत महात्म्य को देख कर, अपने मिथ्या आत्मज्ञान शून्य तप को निःसार जान कर आपकी शरण में आते हैं, आप से धर्मोपदेश का लाभ ले दिगम्बरी दीक्षा धारण कर अपना आत्म कल्याण करते हैं, वास्तव में प्रभु द्वारा प्रतिपादित मोक्ष मार्ग परमोत्कृष्ट है, मिथ्या मार्ग का विध्वंश करने वाला है, जो गुण प्रेमी भव्य जीव प्रभु के शासन का आश्रय लेते हैं उनके रागद्वेष मोह रूपी संसार का नाश हो जाता है, इस प्रकार तीर्थंकर भगवान ही जो सच्चे तीर्थ के कर्त्ता हैं परम, अक्षय, अविनाशी सुख की खानि हैं।

संसारी जीव और कर्मों का संबंध अनादि काल से "सुवर्णकीटिकावत्" चला आरहा है, तो भी स्वभाव

दोनों का जुदा जुदा है जीव जड़ अचेतन कर्म रूप नहीं हो सकता, जड़ कर्म चेतन जीव रूप नहीं हो सकता, सुवर्ण और कीटिका खान से मिले हुए निकलते हैं तथापि दोनों का स्वभाव जुदा २ है। जब एक चतुर न्यारिया अग्नि में कीटिका मिले सुवर्ण को तपाता है तो कीटिका जुदा हो जाती है और शुद्ध निर्मल सुवर्ण जुदा हो जाता है। इसी प्रकार जब एक सम्यक् दृष्टि भेद ज्ञान का सतत् अभ्यास करता है और अपने आत्मा के शुद्ध परम चैतन्य स्वभाव को कर्म कालिमा से सर्वथा जुदा देखने लगता है और विचारता है कि मैं भिन्न हूं, शुद्ध हूं, वीतराग हूं, ज्ञान स्वरूप हूं, ये कर्म और इनकी कलुषता यह सब मेरे से भिन्न पुद्गल जड़ द्रव्य हैं, मेरा इनका कोई संबन्ध नहीं, परमाणु मात्र भी परद्रव्य परगुण, पर पर्याय मेरे नहीं। ऐसे सतत् अभ्यास से जीव कर्म से जुदा हो जाता है और केवल ज्ञान प्रकाश से लोकालोक को जानता हुवा परमात्मा हो जाता है।

इस प्रकार अरहन्त भगवान ने भेद विज्ञान के द्वारा अपने शुद्ध आत्मा को जाना, शुक्ल ध्यान रूपी अग्नि में कर्म मल को भस्म किया, जब चारों घातीय कर्म क्षय हो गये तब पूर्ण ज्ञान स्वभाव प्रगट हो गया, सर्वज्ञ वीतरागमयी अरहन्त पद झलक गया, आत्मा अंतराय

से परमात्मा हो गया, प्रभु का शरीर परमौदारिक हो गया, स्वामी अनन्त अक्षय, अविनाशी अव्याबाध सुख के धारक हो गये, अनन्त गुण उनकी आत्मा में विकसित हो गये, वे ही अरहन्त परमात्मा हैं।

अरहन्त भगवान अनन्त ज्ञान तथा अनन्त दर्शन के धारक हैं, प्रभु का ज्ञान केवल ज्ञान है जो सर्व उपाधि रहित है, निरावरण है, क्रमवर्ती ज्ञान से रहित है, असहाय है अर्थात् किसी इन्द्रि और मन की सहायता के बिना स्वयम् ही प्रत्यक्ष रूप से समस्त पदार्थों को युगपत जानने वाला है। इसी कारण प्रभु का ज्ञान निर्मल है, इसी प्रकार दर्शनावरणीय कर्म के क्षय हो जाने से प्रभु अनन्त दर्शन के धारक हैं, केवल ज्ञान के समान एक ही समय मात्र में लोक और अलोक का सामान्य अवलोकन करने वाले हैं, उनका दर्शन निर्मल है, निरावरण तथा उपाधि रहित है।

जो द्रव्य होता है वह गुण पर्याय सहित होता है, गुण तो सदा द्रव्य के सहभावी होते हैं, अर्थात् द्रव्य में हमेशह एक रूप नित्य रूप पाये जाते हैं और पर्याय नाना रूप होती रहती हैं, जो पर्याय पहले समय में थी वह दूसरे समय में नहीं होती, समय २ में पर्यायों का उत्पाद व्यय रूप होता है, इसी लिये पर्याय को क्रमवर्त्ती

कहा जाता है। जीव द्रव्य के ज्ञान आदि अर्थात् ज्ञान दर्शन, सुख, वीर्य, आदि अनन्त गुण हैं, और पुद्गल द्रव्य के स्पर्श, रस गंध, वर्ण इत्यादि अनंत गुण हैं, ये गुण तो द्रव्य में सहभावी हैं, अन्वयी हैं, सदा नित्य हैं कभी द्रव्य से तन्मय पना नहीं छोड़ते।

पर्याय के दो भेद हैं—एक तो स्वभाव, दूसरी विभाव—जीव के सिद्धत्वादि स्वभाव पर्याय हैं और केवल ज्ञानादि स्वभाव गुण हैं, ये जीव में ही पाये जाते हैं अन्य किसी द्रव्य में नहीं पाये जाते। अस्तित्व, वस्तुत्व द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व यह स्वभाव गुण सब द्रव्यों में पाये जाते हैं, अगुरु लघु गुण का परिणमन षटगुणी हानि वृद्धि रूप है, यह स्वभाव पर्याय सब ही द्रव्यों में है, कोई द्रव्य षट गुणी हानि वृद्धि बिना नहीं है, यही अर्थ पर्याय कहलाती है, यह शुद्ध पर्याय है और यह शुद्ध पर्याय संसारी जीवों के सब अजीव पदार्थों के तथा सिद्धों के पाई जाती है, और सिद्ध पर्याय तथा केवल ज्ञानादि गुण सिद्धों के ही पाया जाता है दूसरों के नहीं। संसारी जीवों के मति ज्ञानादिक विभाव गुण और नर नारकी आदि विभाव पर्यायें सब के पाई जाती हैं। ये तो जीव द्रव्य के गुण पर्याय हुवे। पुद्गल के परमाणु रूप तो द्रव्य तथा वर्णादि स्वभाव गुण, और एक वर्ण से दूसरे वर्णरूप होना ये विभाव

गुण व्यंजन पर्याय तथा एक परमाणु में दो तीन इत्यादि अनेक परमाणु मिल कर स्कंध रूप होना, ये विभाव द्रव्य व्यंजन पर्याय है । द्वयणुकादि स्कंध में जो वर्ण आदि हैं, वे विभाव गुण कहलाते हैं और वर्ण से वर्णान्तर होना, रस से रसान्तर होना, गंध से अन्य गंध होना, यह विभाव पर्याय हैं। परमाणु शुद्ध द्रव्य में एक वर्ण, एक रस, एक गंध और शीत उष्ण में से एक तथा रूखे चिकने में से एक ऐसे दो स्पर्श इस प्रकार पांच गुण तो मुख्य हैं, इनका आदि दे अस्तित्वादि अनन्त गुण है, वे स्वभाव गुण कहलाते हैं, और परमाणु का जो आकार वह स्वभाव द्रव्य व्यंजन पर्याय है, तथा वर्णादि गुण रूप परिणमन वह स्वभाव गुण व्यञ्जन पर्याय है । जीव और पुद्गल इन दोनों में तो स्वभाव और विभाव दोनों हैं तथा धर्म, अधर्म, आकाश, काल इन चारों में अस्तित्वादि स्वभाव गुण ही है, और अर्थ पर्याय षट गुणी हानि वृद्धि रूप स्वभाव पर्याय सब ही के हैं । धर्मादिक चार पदार्थों के विभाव गुण पर्याय नहीं हैं । षट द्रव्यों के यह गुण पर्याय बताये गये हैं, इन में शुद्ध गुण शुद्ध पर्याय सहित जो शुद्ध जीव द्रव्य है, वही उपादेय है, आराधने योग्य है । अरहन्त भगवान ने केवल ज्ञान को प्राप्त किया है, उस में जगत् के समस्त पदार्थ अपने २ स्वभाविक गुणों और पर्यायों सहित एक

साथ झलकते हैं। प्रभु ने विभाव परिणति का स्वयं अपनी आत्मा से सर्वथा अभाव कर दिया है, अब वह परम वीतरागी हैं, निज स्वभाविक परणति में स्थित हैं जैसा कि स्वर्गीय कविवर दौलतराम जी ने कहा है:—

'सब भाव विभाव अभाव कीन, स्वभाविक परणति मय अधीन'

शुद्ध निश्चय नय से आत्मा इन्द्रियों से रहित अमूर्तिक, केवल ज्ञान में अंतर्भूत अनन्य सुख आदि गुणों का समुदाय रूप है, इन्द्रिय अगोचर है, इसीलिये सूक्ष्म है।

शुद्ध निश्चय नय से आत्मा द्रव्यकर्म भावकर्म तथा नो कर्म रूपी मल से सर्वथा रहित है, इस अपेक्षा से सदैव निरञ्जन है, अरहन्त भगवान ने अपनी आत्मा से कर्म मल को धो डाला है इस लिये वे सत्यार्थ निरंजन हैं।

अरहन्त परमेष्ठी सदैव जीवित रहने वाले हैं। वे अपने चेतना प्राण कर संयुक्त हैं, उसी को पूर्णरूप से अपनी आत्मा में विकसित किया है वह आत्मा का सहभावी अक्षय अनन्त गुण है।

प्रभु ने कर्म रूपी शत्रुओं को जीता है इसी लिये वे ही साक्षात् जिन हैं।

इस प्रकार इन उपर्युक्त गुण संयुक्त जो अरहन्त आप्त हैं उन्ही को आचार्यवर प्रणाम करते हैं।

जिस प्रभु ने समस्त असत् पक्ष का नाश कर दिया है, जो सर्वथा निर्दोष है जिस ने राग द्वेष आदि समस्त दोषों को अपनी आत्मा से धो डाला है जो चतुर्गति रूप संसार भ्रमण से सर्वथा छूट गये हैं, जिस की आत्मा में केवल ज्ञान रूप सूर्य पूर्णरूप से प्रकाशमान होरहा है जो दूसरों के हृदय में स्थित सूक्ष्म पदार्थों के जानने वाले ज्ञान को भी जानने वाले हैं, जिनकी निर्मल निरक्षरी वाणी भव्य जीवों के पुण्योदय से खिरती है, वे ही अरहन्त परमात्मा संसार के भव्य जीवों के परम हितकारी बन्धु हैं ऐसे ही जिनेन्द्र भगवान सच्चे आप्त अर्थात् देव हैं।

प्रभु ने हिंसावाद तथा मिथ्यावाद अर्थात् एकान्त वाद का खंडन किया। अहिंसा को परम धर्म बताया, स्याद्वाद के द्वारा वस्तु के यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादन किया। वास्तव में "स्याद्वाद" जैन सिद्धान्त का बीज या जीव मूल है। जैसे शरीर जीव सहित ही कार्यकारी होता है जीव बिना मृतक शरीर किसी भी काम का नहीं। जैन सिद्धान्त बचनात्मक है और बचन क्रमवर्ती है। अन्य मतावलम्बी जो भी कथन करते हैं एक नय की प्रधानता को लिये हुवे ही करते हैं, परन्तु जैन सिद्धान्त सर्वत्र स्याद्वाद से व्यापक है, अर्थात् एकान्त अर्थ से रहित अनेकान्त रूप है। जहां एक नय की प्रधानता होती है, वहां दूसरी

नय की अपेक्षा होती है। इसी कारण जैन सिद्धान्त जीव के लिये कार्यकारी है, अन्य मत एकान्त पक्ष के कारण वस्तु के यथार्थ स्वरूप को निश्चित करने में असमर्थ होने से कार्यकारी नहीं। स्याद्वाद (अनेकान्त) एकान्त श्रद्धान का निषेध कर सर्वाङ्ग वस्तु के वास्तविक स्वरूप को निश्चय कराने वाला है; जैसे बहुत से जन्मान्ध मिले उन्हों ने एक हस्ती के विविध अंगों को अपनी२ स्पर्शन इन्द्रिय द्वारा निश्चय किया, नेत्र विना सर्वांग हस्ती को नहीं जाना। हस्ती के स्वरूप को अपने२ निर्णय के अनुसार अनेक प्रकार बता २ कर आपस में वाद विवाद करने लगे, वहां एक नेत्रवान पुरुष आ निकला उसने यथावत् हस्ती के स्वरूप का निर्णय कर उनकी भिन्न२ कल्पनाओं को दूर किया। ठीक इसी प्रकार एकान्त वादी एक ही वस्तु के अनेक अंगों को अपनी२ बुद्धि द्वारा जुदा२ अन्य अन्य रीति से निश्चय कर बैठते हैं। सम्यक् ज्ञान के विना सर्वांग वस्तु को नहीं जानते हैं, तब एक सम्यक् ज्ञान स्याद्वाद विद्या के द्वारा यथावत् वस्तु के स्वरूप का निर्णय कर उन की भिन्न मिथ्या कल्पनाओं को दूर करता है सांख्य मति वस्तु को कूटस्थ नित्य ही मानते हैं, बौद्ध मति क्षणिक मानते हैं। स्याद्वादी कहते हैं कि यदि वस्तु सर्वथा नित्य ही है तो अनेक पर्याय रूप परिणमन उस

में क्यों और कैसे होता है। यदि वस्तु को सर्वथा क्षणिक ही मान लिया जावे तो "यह वही वस्तु है जो पहिले देखी थी" ऐसा प्रत्यभिज्ञान फिर कैसे होवे। इस प्रकार स्याद्वाद सिद्धान्त सर्वथा एकान्तवाद का निषेध कर निर्णय करता है कि कथंचित् द्रव्य की अपेक्षा वस्तु नित्य भी है और कथंचित् पर्याय की अपेक्षा वस्तु क्षणिक भी है। स्याद्वाद सिद्धान्त एकान्त श्रद्धान का निषेध कर सर्वांग वस्तु का निर्णय करता है। स्याद्वाद समस्त नयों द्वारा प्रकाशित जो वस्तु स्वभाव, उनके परस्पर विरोध को मिटाने वाला है।

नय विवक्षा से वस्तु में अस्ति, नास्ति, एक, अनेक भेद अभेद, नित्य अनित्य आदिक अनेक स्वभाव पाये जाते हैं जिनमें परस्पर विरोध मालूम पड़ता है। जैसे अस्ति नास्ति में प्रतिपक्षी पना पाया जाता है, परन्तु जब इन्हीं स्वभावों को स्याद्वाद द्वारा बतलाया जाता है तो सब विरोध दूर हो जाता है, क्योंकि एक ही वस्तु कथंचित् स्वचतुष्टय (निज द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव) की अपेक्षा अस्ति रूप है, कथंचित् पर चतुष्टय की अपेक्षा नास्ति रूप है, समुदाय की अपेक्षा एक रूप है, कथंचित् गुण पर्याय की अपेक्षा अनेक रूप है। कथंचित् संज्ञा, संख्या, लक्षण की अपेक्षा गुण पर्यायादि अनेक

भेद रूप है, कथंचित् सत्व की अपेक्षा अभेद रूप है। कथंचित द्रव्य की अपेक्षा नित्य कथंचित पर्याय की अपेक्षा अनित्य है। इस प्रकार स्याद्वाद सर्व विरोध को दूर करने वाला है। इस प्रकार स्याद्वाद द्वारा मिथ्या कल्पित एकान्त वादियों द्वारा स्थापित मत मतांतरों का खंडन कर जीव के यथार्थ कल्याण करने वाले मार्ग का प्रतिपादन किया जो भव्य जीवों का कल्याण कर रहा है।

प्रभु परम वीतरागी हैं, चतुर्गति रूप संसार का उन्हों ने अभाव कर दिया है, केवल ज्ञानी हैं भव्य जीवों के निःस्वार्थ बन्धु हैं, प्रभु के वाणी रूप अमृत को पी कर अनेक भव्य जीव अपने हित का सच्चा मार्ग पा लेते हैं। स्वामी की दिव्य ध्वनि वस्तु के यथार्थ स्वरूप को कहने वाली है, परम पवित्र है, ऐसे गुण जिस प्रभु में हैं, वे ही जिनेन्द्र प्रभु सच्चे आप्त हैं तथा देव हैं।

इस प्रकार अरहन्त परमेष्टी के यथार्थ स्वरूप को भली भांति समझ हमें उनका गुणानुवाद करना चाहिये। प्रभु का नाम स्मरण परम उपकारी है, उनका नाम लेने से उनके सर्व आत्मीक गुण बुद्धि के सामने आ उपस्थित होते हैं, उनका अमोघ शासन स्मरण में आ जाता है, वस्तु का यथार्थ स्वरूप ध्यान में आता है, स्मरण करने वाले के भाव पवित्र होते हैं जिस से पाप का नाश होता

है, अन्तराय कर्म का बल घटता है। जितने अंशों में प्रशस्त राग होता है। शुभ कर्मों का बंध होता है, प्रभु के ध्यान से कर्मों की निर्जरा होती है, जिनेन्द्र प्रभु को भक्ति पूर्वक हृदय स्थल में धारण करने से जीवों के दृढ़ कर्म बन्धन इस प्रकार ढीले पड़ जाते हैं जैसे कि चन्दन के वृक्ष पर लिपटे हुवे सर्प मोर के आने से दूर भाग जाते हैं। यूं कहिये कि जैसे मोर के नज़दीक आने से चन्दन वृक्ष के लिपटे सर्प घबरा उठते हैं वैसे ही जिनेन्द्र प्रभु के हृदयस्थ होने पर कर्म कांपने लग जाते हैं, क्योंकि स्वामी स्वयम् कर्मों का नाश करने वाले हैं, उन्हों ने अपने आत्मा से कर्मों का निर्मूल कर दिया।

चौपाई

प्रभु गुण महिमा अगम अपार। नाम एक त्रिभुवन-आधार॥
जो प्रभु नाम मंत्र मन धरै। तासों विपति भुजंगम डरै॥

दो०—नाथ तिहारे नाम तैं, सब अघ जाहिं पलाय।
ज्यों रविकर परकाशतैं, अंधकार विनशाहि॥

